नवाब लटकन

[हास्य-रस-संबंधी उपन्यास]

लेखक

श्रीयुत 'अरुण' बी० ए०

[अमृत, कंट्रोल आदि पुस्तकों के रचयिता]

—:❀:—

मिलने का पता—

गंगा-ग्रंथागार

३६, लाटूश रोड

लखनऊ

तृतीया वृत्ति] सं० २००३ वि० [मूल्य १॥ सजिल्द २)

प्रकाशक
श्रीदुलारेलाल
अध्यक्ष गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय
लखनऊ

अन्य प्राप्ति-स्थान—

१. दिल्ली-ग्रंथागार, चर्खेवालाँ, दिल्ली
२. प्रयाग-ग्रंथागार, ४०, क्रास्थवेट रोड, इलाहाबाद
३. काशी-ग्रंथागार, मच्छोदरी-पार्क, काशी
४. राष्ट्रीय प्रकाशन-मंडल, मछुआ-टोली, पटना
५. साहित्य-रत्न-भंडार, सिविल लाइंस, आगरा
६. हिंदी-भवन, अस्पताल-रोड, लाहौर
७. एन्० एम्० भटनागर ऐंड ब्रादर्स, उदयपुर
८. दक्षिण-भारत-हिंदी-प्रचार-सभा, त्यागरायनगर, मदरास

नोट — हमारी सब पुस्तकें इनके अलावा हिंदुस्थान-भर के सब प्रधान बुकसेलरों के यहाँ मिलती हैं। जिन बुकसेलरों के यहाँ न मिलें, उनका नाम-पता हमें लिखें। हम उनके वहाँ भी मिलने का प्रबंध करेंगे। हिंदी-सेवा में हमारा हाथ बँटाइए।

मुद्रक
श्रीदुलारेलाल
अध्यक्ष गंगा-फ़ाइनआर्ट-प्रेस
लखनऊ

निवेदन

हिंदी के प्रसिद्ध लेखक श्रीलक्ष्मीशंकर मिश्र 'अरुण' का यह हास्य-रस-संबंधी उपन्यास है। आशा है, उनके कंट्रोल-उपन्यास की तरह इसे भी हिंदी-संसार तेज़ी से अपनाएगा।

यह तो आप-जैसे विद्वान् को बतलाने की ज़रूरत नहीं कि किसी भी देश के साहित्य के विकास पर ही राष्ट्र-निर्माण का कार्य होता है। ज्यों-ज्यों हमारा साहित्य बढ़ता जायगा, त्यों-त्यों हम उन्नति की सीढ़ी पर चढ़ते चले जायँगे। इसलिये प्रत्येक भारतवासी महोदय का कर्तव्य है कि अपनी आमदनी का १/१०वाँ हिस्सा लगाकर अपने घर में घरेलू पुस्तकालय खोलें, जिसमें उनका घर, पड़ोस और मुहल्ला ज्ञान के प्रकाश से प्रकाशित हो सके। अपने इष्ट-मित्रों, पास-पड़ोसियों और नगर-निवासियों में अपनी राष्ट्र-भाषा और मातृभाषा हिंदी के प्रति प्रेम जगाने की कृपा कीजिए। हमसे गंगा-पुस्तकमाला के स्थायी ग्राहक बनने के प्रतिज्ञा-पत्र मँगाकर, भरकर और भरवाकर भिजवाइए।

राष्ट्र-भाषा 'भारती' (हिंदी) की पुष्टि-प्रगति और प्रचार-प्रसार के इस पुनीत कार्य में हमारा हाथ बँटाइए। भारत-भर में देव-मंदिरों की तरह भारती-मंदिर—घरेलू पुस्तकालय भी खुलवाइए। १,००,१०० घरेलू पुस्तकालय खुल ही जाने चाहिए। इस संबंध में हमारी हिंदी-प्रसार-योजना और लाइब्रेरी-योजना मँगा लीजिए। फिर गंगा-पुस्तक-माला के स्थायी ग्राहक बन जाइए।

सैकड़ों क्या, हज़ारों हिंदी-भाषी रईस भारतवर्ष में हैं, पर उनका ध्यान हिंदी की पुष्टि-प्रगति की ओर नहीं है। यदि वे चाहें, तो अपने

किसी प्रिय के नाम से एक-एक विषय की पुस्तकमाला हमारे सहयोग से हिंदी में निकलवा सकते हैं। उन्हें हमसे पत्र-व्यवहार करके हिंदी-माता की सेवा और अपने प्रिय का नाम चिरस्थायी करना चाहिए। हम उनकी सेवा करने को प्रस्तुत हैं।

कवि-कुटीर, लखनऊ
२० । ४ । ४६

दुलारेलाल

[१]

दो आदमी गुईन-रोड पर बातें करते हुए जा रहे थे।

पंडित राधेश्यामजी सामने से आते हुए बोले—"भाई नब्बन! कहाँ मटरगश्त में निकले हो?"

"यों ही घूम रहे हैं भाई राधेश्याम!" नब्बन ने ज़रा मुसकराकर कहा—"आपको तो सारी कैफ़ियत मालूम है—रोज़गार चलता नहीं, गिरानी का ज़माना ठहरा, मगर पेट की ख़ातिर कुछ तो किया जाय।"

"हाँ, गिरानी तो मारे लेती है, मगर तुम तो अकेले ही हो, तुम्हें एक अपने पेट की ख़ातिर भी चार पैसे नहीं मिलते क्या?"

"जिसे मुफ़्त ही खाने को मिल जाय, मेहनत करे उसकी बला।" नब्बन के साथी ने कहा।

"तो ऐसा कौन-सा ज़रिया है भाई!" पं० राधेश्याम ने मुसकराकर पूछा—"ज़रा हमें भी वह रास्ता बताओ।"

"आपको नहीं मालूम है क्या?" नब्बन के साथी ने कहा—"आजकल तो भाई नब्बन नवाब लटकन के हम-निवाला हमप्याला हो रहे हैं, फिर इन्हें क्या फ़िक्र?"

"यह बात है दोस्त!" राधेश्याम ने नब्बन की बाँह

पकड़ते हुए कहा—"तो क्या वहाँ तुम्हारी गहरी पहुँच है?"

"वह बहुत बड़े आदमी हैं, आप भी जानते हैं।" नब्बन ने जवाब दिया—"मगर हैं बड़े यारबाश, हम-जैसे ग़रीबों पर बड़े मेहरबान हैं।"

"क्या दोनो टाइम जाते हो?"

"हाँ, दोनो वक़्त वहीं खाता हूँ।"

"एक ज़रा मेरा भी कुछ काम है, करा दोगे?"

"क्या है?"

लौंडे की नौकरी की फ़िक्र है। विना वसीला अच्छी नौकरी मिलती नहीं। उनका अफ़सरों से वास्ता पड़ता है। शायद कोई ज़रिया हो ही।"

"अरे! इसके लिये क्या कहते हो यार! नवाब लटकन और उनका वास्ता न हो! ग़ैरमुमकिन!"

"तो फिर जिस दिन कहो, चलें।"

"जिस दिन के लिये क्या, तुम आज ही चलो।"

"अच्छा तो चलो, सलाम कर ही आवें।"

"हाँ-हाँ, बड़े आदमियों से मिलना-जुलना बड़ा कारामद है, चलो।"

नब्बन और राधेश्याम, दोनो ही नवाब लटकन की कोठी की ओर चल पड़े। जब पहुँचे, तो साहब-सलामत होने के बाद बैठे, और इधर-उधर की गप-शप शुरू हो गई

बातचीत के ही सिलसिले में नब्बन ने कहा—"नवाब साहब ! इनका लड़का बी० ए० पास हो गया है। कोई मौक़ा हो, तो उसे नौकर क्यों नहीं करा देते।"

"मौक़े रोज़ ही आते रहते हैं। यह न कभी मुझसे मिले, न कोई ऐसा तज़किरा ही किया। कहो भाई राधेश्याम ! तुमने लौंडे की ऐप्लीकेशन दिलवाई है कहीं क्या ?"

"जी नहीं। अभी कोई मौक़ा समझ में नहीं आया।"

"तो ख़ैर, किसी मौक़े से उसकी एक अरज़ी कहीं चिपका दो, और आकर मुझे इत्तिला दो, फिर देखा जायगा। ख़ुदा ने चाहा, तो बहुत जल्द बरसरे रोज़गार हो जायगा।"

पं० राधेश्याम को मानो डूबते में तिनके का सहारा मिला। ज़रा मुसकराकर बोले—"इतनी तो मुझे आपकी ज़ात से उम्मीद थी ही।"

"हाँ-हाँ, तुम हमेशा मुझसे उम्मीद रक्खो।"

राधेश्यामजी ख़ुश होकर वहाँ से उठे, और सीधे अपने घर चले आए। अब वह सोचने लगे कि एक दरख़्वास्त लौंडे की दिलवानी ज़रूर चाहिए।

---

[२]

समय की गति बड़ी प्रबल है। यह कभी एक स्थिति में नहीं रहती। एक समय था, जब लखनऊ के नवाब सचमुच नवाब थे, पर अब वह समय आ गया कि उसी नवाब-घराने की हस्तियाँ फ़ाक़ेमस्त हैं। पेट की ख़ातिर दर-बदर ठोकरें खाती फिर रही हैं। यही कारण है कि अब फ़ाक़ामस्तों और कँगलों को लोग मज़ाक़ में 'लखनऊ के नवाब' के नाम से पुकारने लगे हैं।

इसी नवाब-घराने में नवाब शफ़ीअहमद भी हुए, जिन्होंने परमात्मा की असीम कृपा से फ़ाक़ामस्ती तो न उठाई, आनंद से जीवन बिताया, धनोपार्जन भी ख़ूब किया, मगर थे बड़े काइयाँ। अपने काइयाँपन से कभी न चूकते थे। चरित्र-हीन होते हुए भी उन्होंने धन-संग्रह करके कुछ थोड़ी-सी ज़मींदारी ख़रीद ली थी, जिसकी सालाना आमदनी लगभग ५०००) थी। बड़े चैन से गुज़र होती रही। धीरे-धीरे अँगरेज़ी ज़माने ने ज़ोर पकड़ा। अतः उन्हें भी ख़ासी चिंता अपने लड़के अब्दुलक़दीर को अँगरेज़ी पढ़ाने की सवार हुई। उसे सब लोग प्यार में नवाब लटकन कहते थे, क्योंकि बचपन में उसके कान में लटकन पड़ा रहता था।

जिस साल नवाब शफ़ीअहमद का इंतक़ाल हुआ, उसी

साल अब्दुलक़दीर ने मैट्रिक पास कर लेने के बाद पढ़ना छोड़ दिया, और घर तथा ज़मींदारी की देख-रेख का भार उनके सिर आ पड़ा।

यों ही दिन, रात, महीने और वर्ष बीतने लगे। ईश्वर की असीम कृपा के फल-स्वरूप नवाब अब्दुलक़दीर उर्फ़ लटकन का जीवन आनंद से गुज़रने लगा।

नवाब साहब ने पैत्रिक संपत्ति पाने के साथ-साथ अपने पिता के आचरण को भी अपनाया था, ख़ूब अपनाया था। भला, वह ऐसा क्यों न करते, अपने बाप के असली बेटे थे ही! तब क्या उनका बाप के समान अधिकारों पर हक़ न था? औलाद को मा-बाप से और दो अंगुल आगे बढ़कर चलना चाहिए, जिससे बाप का नाम रोशन रहे! नवाब लटकन अक्सर सोचा करते थे कि करीमबख्श को मेरे वालिद बुज़ुर्गवार ने नौकर रक्खा, उसकी बीवी मेरे घर में काम करती रही, करीमबख्श बाहर था। आख़िरकार यही हुआ कि उसकी बीवी वालिद साहब की मक़बूज़ा बीवी बन गई। अब तो वे दोनो मर चुके हैं। उनका लौंडा नज़ीरा है। वह मेरे घर में ही पला, इतना बड़ा हुआ। मैंने उसकी शादी भी कर दी, गौना भी हो गया। मुनीरन कहती है—"दुलहिन क्या है, बस गुड़िया है, गुड़िया! मानो साँचे में ढाली गई है।" तब मैं उस पर भी अपना क़ब्ज़ा क्यों न करूँ?

असंयमता तथा अक्रियशीलता (आरामतलबी) ने विचार-धारा में अवरोध पैदा करके उसे शिथिल बना दिया, जिसके कारण विचार-प्रवाह में बड़े-बड़े भँवर पड़ गए। जिसे देखिए, वही इन भँवरों में चक्कर खाता, डूबता, उतराता दिखाई दे रहा है।

नियम है कि जब पुरुष-समाज असंयमी है, तो स्त्री-समाज असंयमी अवश्य बनेगा। यदि हम यह चाहें कि हमारी स्त्रियाँ सच्चरित्रा हों, सती-साध्वी हों, तो पुरुष-समाज को सचेत होकर उच्छृंखलता के भँवर से बचने की प्रबल आवश्यकता होगी।

मगर हमारे नवाब साहब को इसकी क्या परवा! स्त्रियाँ बनें या बिगड़ें, उन्हें अपने आमोद-प्रमोद से ग़रज़ है। रोज़ ही एक-न-एक तवायफ़ उनके मनोरंजन की वस्तु बनकर सैकड़ों रुपयों पर हाथ साफ़ करती थी। फिर लखनऊ-ऐसे शहर में इसकी कमी भी क्या थी? हालाँकि नवाब साहब की उम्र इस समय ४० वर्ष के लगभग पहुँच चुकी थी, और ईश्वर की दया से तीन-चार बच्चे भी थे। लड़का १५ साल का हो चुका था, और अँगरेज़ी शिक्षा प्राप्त कर रहा था। एक लड़की इससे बड़ी थी। वह भी पढ़ रही थी। नवाब साहब की इच्छाएँ इतनी प्रबल थीं कि इस उम्र में पहुँचने पर भी दूसरी शादी कर बैठे थे। इस नई सहयोगिनी की उम्र भी इस समय २१ वर्ष की थी और थी मानो साँचे में ढली

हुई पूरी योरपियन लेडी। उसे था न किसी का डर न ख़ौफ़। बिलकुल आज़ाद। नवाब साहब ने उसके रंग-रूप पर फिसलकर शादी कर ली थी।

लेडी साहबा ने नज़ीरा को अपनी सेवा में रहने के लिये चुन लिया। किसी की क्या ताब कि उसे कोई उसके पास आने-जाने से रोक सके। जब चाहती, नज़ीरा को साथ लेकर टहलने चली जाती, जब चाहती, साथ लेकर सिनेमा देखने निकल जाती। उसे दिन-रात किसी समय भी बाहर-भीतर जाने-आने में कोई डर न था।

नवाब साहब की लड़की नजमा भी अपनी विमाता और नज़ीरा के साथ घूमने और सिनेमा देखने जाया करती थी। नजमा पर भी अँगरेज़ी शिक्षा का प्रभाव पड़ चुका था, तब वह किसी के बंधन में रहना पसंद भी करती कैसे? यों ही दिन गुज़रने लगे।

---

[३]

उस रोज़—

नवाब साहब की यार-मंडली जमा हुई। खैरू बोला—"आपने सुना नवाब साहब ! मियाँ शब्बीरहसन 'खान-बहादुर' हो गए !"

"हाँ, उनकी खानबहादुरी की शोहरत तो आज सारे शहर में है।" नब्बन ने कहा।

"सुन तो मैं भी रहा हूँ, मगर हो कैसे गए ?" नवाब साहब ने सवाल किया।

"हाँ, तरकीब बताओ खैरू ! क्या अच्छा हो, हमारे नवाब साहब भी खानबहादुर हो जायँ।" नब्बन ने कहा।

"बताओ भाई खुदाबख्श ! तुम्हीं बताओ।" खैरू ने कहा।

"मुझे तो कुछ मालूम नहीं।" खुदाबख्श ने शुबराती की ओर देखकर कहा—"बाजार में तो बड़ी-बड़ी बातें करते थे, अब बोलते क्यों नहीं।"

"तरकीब तो मुझे नहीं मालूम है भाई, हाँ, इतना जानता हूँ कि खानबहादुरी है चीज़ बड़ी, और उसके पाने की कोशिश करनी चाहिए।"

इसी वक़्त सग़ीर हुसैन आ गया, जो नवाब साहब के

साथ का पढ़ा और बड़ा चलता-पुरज़ा था। आकर बोला—"मुझसे पूछो तरकीब। तुम सब क्या जानो।" सग़ीरहुसैन ने बैठते हुए कहा—"अगर ख़ुदा ने चाहा, तो बहुत जल्द नवाब साहब भी ख़ानबहादुर हो जायँगे।"

"कैसे?" नवाब लटकन ने उत्सुकता से उसकी तरफ़ देखकर पूछा।

"बस, अफ़सर लोगों को दावतें दीजिए, चंदों में रक़म ख़र्च कीजिए, तो ख़ानबहादुरी आपके रूबरू हाथ जोड़े खड़ी दिखाई देगी!"

नवाब साहब बोले—"बस, यही ठीक है। मुझे भी याद पड़ता है कि शब्बीरहसन ने लाट साहब को दावत दी थी एक दफ़ा।"

उसी दिन से नवाब साहब ख़ानबहादुरी के सुनहले ख्वाब देखने लगे, और उनके चापलूस यार-दोस्तों की तजवीज़ें चलने लगीं; उन निठल्लों को कोई काम तो था ही नहीं, नवाब साहब के पास ही दिन-रात पड़े रहते और टुकड़े तोड़ा करते।

सरकारी ख़िताब पाने के शौक़ ने नवाब साहब को अंधा बना दिया। वह इसी धुन में लग गए। धन को पानी की तरह बहा देने का फ़ैसला करके हुक्कामों को दावतों पर दावतें देने लगे। जब कभी चंदे का सवाल आता, तो नवाब साहब उस मैदान में सबसे आगे ही दिखाई पड़ते

थे। इस प्रकार उन्होंने मुक़ामी अफ़सरों को ख़ूब मुट्ठी में कर लिया।

आज भी वह इसी धुन में हैं। हिज़ एक्सी लेंसी गवर्नर साहब बहादुर इलाहाबाद से लखनऊ आनेवाले हैं। उनकी दावत करना ज़रूरी है। पहले की दावतों का प्रबंध इन्हीं के सहपाठी, सग़ीरहुसैन द्वारा हुआ था, और बहुत अच्छा रहा था, किंतु वह इस अवसर पर यहाँ नहीं हैं। कदाचित् कहीं बाहर गए हैं। यही कारण है कि कमरा सजाने का काम मुंशी नासिरअली पर छोड़ रक्खा है। परसों लाट साहब की दावत है। आज से ही अगर प्रबंध न हुआ, तो ठीक समय पर कैसे हो सकेगा? वह इन्हीं विचारों में पड़े थे कि मुंशी नासिरअली ने आकर कहा—"हुज़ूर! कमरे का मुलाहिज़ा फ़रमा लीजिएगा चलकर।"

"अच्छा, चलता हूँ।" नवाब साहब कुरसी से उठकर चलते हुए बोले—"दरी, कुरसी, मेज़, अल्मारी वग़ैरा सभी क़ायदे से लग गईं?"

"हाँ, हुज़ूर! मैंने तो अपनी समझ से सब ठीक कर दिया है।"

दोनो उस कमरे में पहुँचे, जो दावत के लिये सजाया गया था। देखते ही नवाब साहब की त्योरियाँ चढ़ गईं, बोले—"नासिरअली! तुम तो निरे बुद्धू हो। न-जाने तुम्हें अक़्ल कब आएगी! क़ब्र में पहुँचने पर? लाट साहब

की दावत के लिये कमरे की यह सजावट ? एक मेज़ और उसके इर्द-गिर्द सिर्फ़ चार कुरसियाँ ? ग़ज़ब किया तुमने ! सारा वक़्त बेकार खो दिया।"

ठीक इसी समय उन्होंने देखा कि सामने से सग़ीरहुसैन चले आ रहे हैं। उन्हें देखते ही नवाब साहब का पारा जो ११० डिग्री पर चढ़ गया था, धीरे-धीरे नीचे उतरने लगा। जब वह और क़रीब आ गए, तो नवाब मुस्कराते हुए बोले—"आओ जी ! बड़े वक़्त से आए।"

सग़ीरहुसैन भी कमरे में दाख़िल होते हुए बोले—"हाँ, मैं अभी इसी गाड़ी से आया हूँ। मालूम हुआ कि आपने मुझे आज सबेरे याद किया था। बस, मैं बग़ैर नाश्ता किए ही चला आया। मगर दावत के लिये कमरे की यह सजावट ?"

"अरे भाई ! मैं अभी मुंशीजी से इसी बात पर झुँझला रहा था कि तुम दिखाई पड़े। अब जैसा मुनासिब समझो, इंतिज़ाम करो।"

"मेरी राय में फ़र्श पर दरी न होनी चाहिए। यह तो भद्दी है, और बहुत ही भद्दी।"

"फिर, कैसा फ़र्श हो ?"

"ऊनी क़ालीन बिछाई जाय, तो बेहतर होगा। भई ! यह भी तो सोचो, 'डी-सी' या 'सी' की नहीं, बल्कि दावत है लाट साहब की।" सग़ीरहुसैन ने मेज़ पर हाथ मारते हुए कहा।

"अच्छा, ऊनी क़ालीन सही, मगर मेरे यहाँ तो है नहीं।"

"यह आपने एक ही कही। क्या बाज़ार में क़ालीन नहीं? या आपके पास पैसा नहीं?"

"अच्छा ख़ैर, नया ख़रीद लो। कुछ मुज़ायक़ा नहीं। और हाँ, बाज़ार जाकर अपनी मरज़ी का ख़रीद लाओ।"

"अच्छा, मैं बाज़ार जाता हूँ, और आप छोटी-छोटी चार मेज़ें यहाँ बिछाने के लिये और मँगवा लें। मगर सब एक ही डिज़ाइन की हों। लाइए, मुझे रुपए दीजिए।"

"कितना दे दूँ?"

"हज़ार-बारह सौ से कम में तो मिलती नहीं क़ालीन। अब आप जो मुनासिब समझें, दे दें।"

नवाब साहब ने मुं० नासिरअली को हुक्म दिया कि वह फ़ौरन् ही १२००) निकालकर सग़ीरहुसैन को दे दें। निदान, सग़ीरहुसैन रुपया लेकर बाज़ार आए। फ़रशी ऊनी दरी, जो कमरे में बिछाने लायक़ थी, ८०) ख़रीदी, और ४००) अपनी अंटी में लगाए। एक ताँगे पर सवार हुए, और सीधे नवाब साहब के मकान पहुँचे।

---

[४]

एक रोज़ शाम को—

नजमा और नई बेगम उर्फ़ लेडी साहबा को लेकर नज़ीरा सिनेमा दिखाने पहुँचा। टिकटघर के सामने उसकी एक शख्स से मुलाक़ात हो गई। उसने नज़ीरा से पूछा—"यार! ये दोनो परियाँ कौन हैं?"

नज़ीरा ने उसे झिड़ककर जवाब दिया—"कोई हैं—तुमको क्या?"

"अजी, ऐसी बेरुखी? दोस्तों से भी चलने लगे, क्यों? भूल गए मलिहाबाद की बातें?"

नज़ीरा कुछ नरम पड़ा, और बोला—"मेरे मालिक के घर की हैं। सिनेमा दिखाने लाया हूँ।"

उस साथी ने दोनो औरतों पर नज़र डालकर कहा—"कुछ मेरा भी ख़याल रखना दोस्त! यह नहीं कि अकेले..."

बात काटकर नज़ीरा बोला—"......ख़बरदार! ऐसी बातें मत करो।"

"ऐ हे! बड़े दूध के हो बेटा! सारी क़लई यहीं खोल दूँगा बीच बाज़ार में!"

नज़ीरा सिटपिटाकर कहने लगा—"मेरा यह मतलब नहीं, तुम्हें नाराज़ थोड़े ही करता हूँ। ज़रा मौक़े से बात किया करो।"

"तो बतलाओ, ये लोग कौन हैं ?"

नज़ीरा ने मुसकराते हुए कहा—"वह नीली साड़ीवाली हमारी नई सरकार साहबा हैं, और वह दूसरी धानी साड़ी-वाली नवाब साहब की लड़की नजमा है। अच्छा, मैं उन्हें टिकट दे दूँ, तब तुमसे बातें करूँ।"

नज़ीरा टिकट लेकर दोनो को दे आया। वे दोनो सिनेमा-हॉल के अंदर चली गईं। अब नज़ीरा पलट आया। उस आदमी ने कहा—"यार! अगर कुछ पर्दा न रक्खो, तो तुमसे एक बात पूछूँ।"

नहीं, पर्दा न रक्खूँगा। पूछो, क्या पूछते हो ?"

"तुम्हारे नवाब साहब तो अधेड़ हो चुके, और यह नई सरकार साहबा अभी कमसिन नज़र आती हैं। इनसे उनसे पटती कैसे होगी ? इन्होंने कोई नया सिलसिला भी......"

"बता दूँ ?" कहकर नज़ीरा मुसकराया।

"तुम्हें मेरी क़सम, बता भी दो।" उसने नज़ीरा की गर्दन पर हाथ रखते हुए कहा—"छिपाना मत, देखो, तुम मेरे लँगोटिया यार हो।"

"हमारी सरकार साहबा को नवाब साहब की क्या ज़रूरत।" नज़ीरा ने आँखें नचाते हुए कहा।

"तो मालूम होता है, तुमने अपना रंग जमाया है उस्ताद !" उसने नज़ीरा की पीठ पर हल्का हाथ मारते हुए कहा।

"तो तुम्हारे लिये कौन-सी रोक-थाम है ?"

"मगर तुम मदद करो, तब न ?"

"अच्छा भाई नूरू ! एक बात है। कुछ ख़र्च कर सकते हो ? कानपुर की मिल में नौकरी करके तुमने ख़ूब रक़में पीटी हैं।"

"हाँ, जो तुम कहो, वही ख़र्च करूँ। बोलो, क्या कहते हो ?"

"सिर्फ़ ५०) ।"

"मैं तैयार हूँ। कहाँ साले ५०) आते हैं, कहाँ जाते हैं।"

नूरू ने तड़पकर कहा—"बोलो, कब की रही।"

"देखो, मौक़ा निकालूँगा। सब्र रक्खो। हाँ, यह तो कहो, कानपुर से कब आए ?"

"अभी छ महीने बाद परसों ही आया हूँ।"

"माहवार क्या पैदा करते हो ?"

"७०-७५ रूपए पड़ जाते हैं। यहाँ मा हैं, ३०) उनके लिये भेज देता हूँ। मेरे लिये ४०-४५ रूपए बहुत हैं।"

"तब तो तुमने ख़ासी रक़म जमा कर ली होगी।"

"हाँ, सब थोड़े ही ख़र्च हो जाते हैं। मगर तुम तो यार अब ख़ूब फ़ैशनेबिल बने रहते हो। तुम्हें क्या माहवार मिलता है ?"

"मेरी तनख़्वाह के लिये कुछ न पूछो। वही पुराना हिसाब-किताब।"

"सो कैसे ? इस वक़्त भी जो कपड़े तुम पहने हो, क्या ५०) की लागत से कम होंगे ?"

"इसका क्या।" नज़ीरा ने कुछ मुसकराकर कहा—"यह तो हमारी सरकार साहबा की इनायत है।"

"अच्छा ! यह बात है।" नूरू ने नज़ीरा का कंधा हिलाते हुए कहा—"क्या तुमने ख़ुद कपड़ों के लिये कहा था ?"

"नहीं यार ! मैं क्यों कहता। उन्होंने ख़ुद कहा, नज़ीरा ! तुम्हारे कपड़े बहुत गंदे रहते हैं, साफ़ पहना करो। मैंने जवाब दिया कि मेरे पास और हैं ही नहीं। तब उन्होंने ख़ुद ही ये कपड़े बनवा दिए।"

"नवाब साहब ने तो कुछ नहीं कहा फिर ?"

"वह बेचारे क्या कहते। उनको कुछ चलती भी है सरकार के सामने।"

"तब तो तुम्हारे पौ-बारे हैं यार ! बढ़िया हाथ मारा है।" ये लोग यों ही बातें कर रहे थे, तब तक और दो-चार आदमी वहाँ आ गए। तब ये दोनो चाय के होटल में जा बैठे। यों ही समय व्यतीत हो गया, और सिनेमा ख़त्म हो जाने पर वे दोनो मा-बेटी भी बाहर आ गईं, और नज़ीरा को साथ लेकर, फ़िटन पर बैठ घर की ओर चल दीं।

"लाट साहब की दावत हो गई, मगर २००० रुपयों में बत्ती लग गई, इसकी क्या फ़िक्र? साहब ख़ुश तो रहे। यों तो वैसे भी हज़ारों रुपए बर्बाद ही होते रहते हैं। हाँ, मुझे उम्मीद तो हुई कि अब जल्द-से-जल्द मैं ख़ानबहादुर हो जाऊँगा।" नवाब साहब यों ही सोच-विचार में मग्न थे कि सामने मुंशी नासिरअली ने आकर, आदाब बजाकर अर्ज़ किया—"हुज़ूर! अब क्या हुक्म है?"

"सुनिए मुंशीजी! आप चूँकि हमारे अब्बाजान के सामने के पुराने मुलाज़िम हैं। बुड्ढे हो चुके हैं। मैंने सोचा था, अब आपको कारेख़ास में रखकर आपकी परवरिश करूँ, मगर नहीं, आप यहाँ का काम नहीं कर सकेंगे, इसलिये आप इलाक़े पर ही वापस जायँ, और वहीं काम करें।"

'जैसी हुज़ूर की मरज़ी।" मुंशी नासिरअली ने कहा—"मैं तो हर तरह आपकी ख़िदमत करने को तैयार हूँ।"

"तो बस ख़ैर, आप इलाक़े जायँ। ज़्यादा बातों से कोई ग़रज़ नहीं।" यह सुनकर मुंशीजी उलटे पाँव फिरे, और इलाक़े जाने की तैयारी करने लगे।

कुछ दिनों बाद—

पीर मुर्शिदों और पैग़ंबरों की लाखों मिन्नतें मानने और

दरगाहों पर रेवड़ियाँ और चादरें चढ़ाने के बदले आखिर-कार नवाब लटकन को ख़ानबहादुर का ख़िताब मिल ही गया। अब वह ख़ानबहादुर नवाब अब्दुलक़दीर साहब बन गए।

यार-दोस्तों ने इकट्ठे होकर पचासों तरह से मुबारकबादी दी—क़सीदे पढ़े गए, मीटिंग हुई, और दावत देने की तजवीज़ पेश हुई, मगर उसी रोज़ एक ख़ास जलसा होनेवाला था। मुस्लिम-कल्चर-लीग का सालाना जलसा ख़त्म हो जाने के बाद मित्र-मंडली को दावत दी जाय, यही फ़ैसला ठीक रहा।

'मुस्लिम - कलचर-लीग' का जलसा सफल करने के ख़याल से उसके संचालकों ने एड़ी-चोटी का पसीना एक कर दिया था। बाहर से भी अच्छे-अच्छे महानुभाव बुलवाए गए थे। उनमें से कुछ महाशय आ भी चुके थे। कुछ के आ जाने का अभी इंतिज़ार था। हमारे ख़ानबहादुर साहब भी बड़ी सरगरमी से लीग के जलसे को सफल बनाने में भाग ले रहे थे।

जलसे की कार्यवाही शुरू हो गई। विद्वानों ने अनेक विषयों पर अपने-अपने व्याख्यान दिए। उपस्थित जन-समूह में ख़ूब तालियाँ पीटी गईं, और पहले दिन की कार्यवाही समाप्त हुई।

दूसरे दिन अगले साल के अधिकारियों का चुनाव था। बहुमत से ख़ानबहादुर नवाब अब्दुलक़दीर साहब प्रेसीडेंट

चुन लिए गए। इसी प्रकार अन्य अधिकारियों का भी चुनाव हुआ, और सबके बाद व्याख्यान की बारी आई।

भद्र पुरुषों ने 'औरतों के हक़ में हमारा फ़र्ज़', 'नेकनीयती और ख़ुदातर्सी', 'हमारे आमाल', 'इनकसारी और दरियादिली', 'आज़ाब और सवाब' वग़ैरा-वग़ैरा विषयों पर ख़ूब जी खोलकर रोशनी डाली। उपस्थित मंडली में क़दम-क़दम पर 'आफ़री' की सदाएँ बुलंद हो रही थीं।

सबसे आख़िर में ख़ानबहादुर साहब सदर ने खड़े होकर लोगों को मुख़ातिब करते हुए कहा—"दोस्तो! आपने हमारे बाहर से आए हुए नौजवान शहर के चंद असहाब की ज़बान से निकले हुए अल्फ़ाज़, जो मानिंद क़ीमती गौहर के हैं, सुने, और उनसे ख़ासा लुत्फ़ उठाने के साथ-साथ उन पर कारबंद होने का भी तहैया किया। मुझे ऐसा महसूस होते हुए बड़ी ख़ुशी पैदा हो रही है। मैं भी यही मशविरा दूँगा कि आप लोग आपसी बुग़्ज़ और कीना को दिल से निकालकर भाईचारे का वास्ता या रिश्ता क़ायम करें। नफ़्सपरास्ती बिलकुल ही छोड़ दें। हम मानते हैं, इस रास्ते पर चलनेवाला शख़्स ख़ुद को उस वक़्त पर जन्नत में बैठा हुआ महसूस करता है, मगर कितनी देर? वही चंद मिनट। नतीजा क्या निकलता है कि असली जन्नत का दरवाज़ा उसके लिये बिलकुल बंद हो जाता है। लिहाज़ा हमारा पहला फ़र्ज़ है कि हम दूसरी औरत, लड़की या बहू को

अपनी मा और बहन की तरह ही देखें। तुम दूसरों की इज्ज़त रक्खोगे, खुदा तुम्हारी इज्जत रक्खेगा। अलावा इसके यह भी देखने में आया है कि हमारे भाई जो मालदार हैं, वे अपनी दौलत के ग़रूर में अपने दुश्मनों की जान तक लेने में आना-कानी नहीं करते। दोस्तो! यह बात बहुत बुरी है। खुदा हमारी इन हरकतों से कभी ख़ुश न होगा। हमें चाहिए, हम दुश्मन के साथ भी वह तौर-तरीक़ा बर्तें, जिससे वह हमसे दुश्मनी खत्म कर हमारा दोस्त बन जाय। तभी नाम है, तभी इज्जत है। तभी हम भी खुश होंगे, और हमारा खुदा भी। इन सारी बातों पर अमलपैरा होने के लिये एक बात की खास जरूरत है कि हम सच्चाई और रास्ती को कभी हाथ से न छोड़ें। हमेशा उसे गले लगाए रहें। कहा भी है—

'रास्ती इक बेशक़ीमत चीज़ है, क्योंकि बैतुल्लाह की दहलीज़ है।'

"इसलिये रास्ती को अपनाइए। इसके होते हुए कोई भी बुरा काम आपसे न होगा। बोलिए, आप लोग क्या कहते हैं?"

चारों ओर से आवाज़ें उठने लगीं—"आपने ठीक फ़रमाया।" "हम रास्ती को जरूर अपनाएँगे।" "अज़ाब का कोई भी काम हरगिज़-हरगिज न करेंगे।" वग़ैरा-वग़ैरा। जलसा समाप्त हुआ, और पब्लिक में काफ़ी जोश रहा।

ख़ानबहादुर साहब भी जलसा बरख़ास्त होने पर अपने घर आए। क्या देखते हैं कि दरवाज़े पर कुछ फ़क़ीर दुआएँ दे रहे हैं, और कह रहे हैं—"अल्लाह भला करे, ख़ानबहादुरी के ही सदक़े में रोटी मिल जाय।" "लोग को 'सदरी' मुबारक हो!" यों ही दुआओं की बौछार हो रही थी। इन्हीं लोगों में एक ग़रीब लड़की, नहीं-नहीं, युवती भी हाथ पसारे खड़ी थी। उसमें रूप था, सौंदर्य था, लावण्य था, मनोमोहकता थी, मगर सब दरिद्रता तथा जीर्ण-शीर्ण कपड़ों के पर्दे में छिपी थी। उन गुणों को यदि कोई देख सकता था, तो केवल भावुक, रसिक। दूसरों में देखने की क्षमता न थी।

ख़ानबहादुर साहब ऐसे गुण-रत्नों के ख़ासे जौहरी थे। उनकी एक निगाह ने ही सभी गुणों की परख कर ली। नौकरों से बोले—"घर से रोटी लाकर इन भिखमंगों को दे दो।" और साथ ही उस युवती कन्या को संबोधित करते हुए बोले—"क्या तुम यहीं रहती हो?"

"नहीं मालिक! मैं बाहर देहात की रहनेवाली हूँ।"

"क्या तुम्हारे मा-बाप नहीं हैं?"

"दोनो को हैज़ा हो गया, और मर गए।"

"कोई भाई-बहन भी नहीं है क्या ?"

"नहीं मालिक ! मैं अकेली ही हूँ।"

"तुम्हारा नाम क्या है ?"

"वहीदन।"

"अच्छा वहीदन, तुम बाहर बाजार में भीख माँगती न फिरो। मुझे एक नौकरानी की ज़रूरत है ही, तुम मेरे पास रहो।"

लड़की यह सुनकर खुश हो गई। उसने सोचा—चलो, अच्छा हुआ, रोटी-कपड़े का सहारा हो गया। लड़की वहीं रुक गई, और बाक़ी भिखमंगे रोटी का एक-एक टुकड़ा लेकर चलते बने।

खानबहादुर साहब के आज्ञानुसार बाहर के ही बरामदे में वहीदन को भर पेट रोटी खिला दी गई। वह सारे दिन की भूखी थी। उसने रोटी खाकर सुख की साँस ली। रात हो चुकी थी। इधर वहीदन को सारे दिन भूखे रहने के बाद भोजन मिलने के कारण निद्रादेवी ने अपनी गोद में लेने के लिये हाथ बढ़ाए। वहीदन बैठे-बैठे ही ऊँघने लगी। खानबहादुर साहब एक ओर बैठे हुए बातें कर रहे थे। एकदम उनकी निगाह वहीदन पर पड़ी। सोचा— यह सोना चाहती है। बोले—"वहीदन ! उठो, सामनेवाले कमरे के अंदर जाकर सो रहो।" नौकर से बोले—"करीमू ! एक कंबल लाकर वहीदन को दे दो।"

वहीदन के तन पर कोई साबित कपड़ा न था। कड़ाके का जाड़ा पड़ रहा था, इससे वह काँप भी रही थी। उसने कंबल पाकर खानबहादुर को लाखों दुआएँ दीं, और मन में सोचने लगी—बड़े अच्छे आदमी हैं। इनके दिल में ग़रीबों के लिये कितना रहम है। यही सोचते-सोचते वह कमरे में गई, और कंबल ओढ़कर लेट रही।

खानबहादुर साहब भी जब खा-पीकर निवृत्त हुए, तब रात के ग्यारह बज चुके थे। नौकर-चाकर भी बावर्चीख़ाने में खाने-पीने में लगे हुए थे। उस समय बाहर कोई न था। नवाब साहब सीधे वहीदन के कमरे में पहुँचे। बोले—"वहीदन, क्या सो रही हो? एं! तुम तो ज़मीन पर ही पड़ी हो।" वहीदन जाग गई, और उठकर बैठ गई। नवाब साहब कहते गए—"मेरा ख़याल था, इस कमरे में खाट पड़ी है।"

"नहीं मालिक! यहाँ तो मैं बड़े आराम से सो रही थी।"

"नहीं-नहीं, उठो, दूसरे कमरे में चलो। वहाँ खाट पड़ी है, तुम आराम से सोओ।"

वहीदन उठकर नवाब साहब के साथ दूसरे कमरे में चली आई। मगर वह अपने जी में सोचती थी, क्या इनके घर में औरतें नहीं हैं? मुझे उनके पास ही सोने के लिये क्यों नहीं भेज दिया। जब कमरे में पहुँची, देखा; कमरा ख़ूब सजा हुआ है। बड़ी अच्छी-अच्छी तसवीरें शीशे में जड़ी

हुई दीवारों पर लटक रही हैं। एक ओर बहुत बड़ा आईना लगा हुआ है। बीच में लटका हुआ झाड़ रोशनी दे रहा है। एक ओर मेज़-कुरसी लगी हुई है। यह सब देखकर वहीदन काँप गई। वह सोचने लगी—क्या मुझ-सी ग़रीब भिखारिन के सोने के लिये यह कमरा !

नवाब साहब ने खूँटी पर से एक ऊनी क़मीज़, एक वास्कट और एक फ़ैंसी किनारे की धोती देकर कहा—"वहीदन ! अपने फटे-पुराने और गंदे कपड़ों को उतार डालो, और इन्हें पहन लो । मैं अपने नौकर-चाकरों को गंदा रखना पसंद नहीं करता ।"

वहीदन ने झिझकते हुए उन कपड़ों को ले तो लिया, मगर उसका दिल बाँसों उछलने लगा। वह सोचने लगी—कुछ दाल में काला ज़रूर है। आज ही बिना किसी ख़िदमत के बदले मेरी यह इज्ज़त ! वह कपड़े पहनती जाती थी, और सोचती जाती थी। हो-न-हो, यह सारी इज्ज़त सिर्फ़ मेरी ग़रीबी की नहीं, मेरी जवानी की है। मेरी जवानी ने ही इन्हें मतवाला बना दिया है। ख़ैर, देखा जायगा। मैं भी किसी छिछोरे मा-बाप की औलाद नहीं हूँ। अगर मैं अपनी जवानी ही बेचती, तो इस उम्र में क्यों दर-दर मारी-मारी फिरती। मेरे क़सबे में ही पचासों मेरे चाहनेवाले थे। मुझे उन्होंने लाखों सब्ज बाग़ दिखाए। सैकड़ों चालें मुझसे चलीं, मगर मैं असमत बेचने पर राज़ी न हुई। मुझे अपनी असमत

जान से भी ज़्यादा प्यारी है। मर जाऊँगी, मगर मा-बाप के नाम पर कालिख न लगने दूँगी। आज मेरी बदक़िस्मती ने मा-बाप का साया मेरे सर से छीन लिया। मुहताज बनाकर एक-एक दाने के लिये भिखारी बना दिया, तो क्या उसने मेरी इज़्ज़त भी छीन ली ? नहीं, मेरी इज़्ज़त मेरे पास है, और हमेशा मेरे पास रहेगी। वह यों ही सोचती हुई कपड़े पहनकर बैठ रही।

नवाब साहब वहीदन को कपड़े देकर कमरे से बाहर चले गए थे। वहीदन कमरे में अभी अकेली ही बैठी थी कि नवाब साहब आ गए। मुसकराते हुए बोले—"हाँ, वहीदन ! अब ठीक हो तुम।" यह कहकर उन्होंने अल्मारी खोलकर इत्र की एक शीशी निकाली, और अपनी उँगलियों पर इत्र लेकर वहीदन की नाक, गाल और सारे बदन पर लगा दिया। वहीदन का शरीर थर्रा गया, और साथ ही लज्जा ने भी आ घेरा। मगर ख़ामोश होकर रह गई।

"अब खड़ी क्यों हो वहीदन !" नवाब साहब ने मुसकराकर कहा—"यह पलंग तुम्हारे वास्ते ही बिछा पड़ा है।"

"नहीं मालिक ! मैं इस पर सोने लायक़ नहीं हूँ।"

"सो क्यों ? तुम्हें क्या एतराज़ है ? वहीदन !"

"नहीं सरकार ! यह आप लोगों के ही योग्य है। मैं तो यतीम, ग़रीब, भिखारिन ठहरी। मैं अपने उसी कमरे में जाती हूँ।" यह कहकर वहीदन बाहर चल दी। नवाब

साहब ने बढ़कर उसका हाथ पकड़ लिया, और फिर अंदर खींचकर खुद पलँग पर बैठते हुए बोले—"घबराओ नहीं, मैं भी यहीं रहूँगा। तुम्हें किसी तरह की तकलीफ़ नहीं होगी।"

वहीदन झुँझलाकर चीख़ पड़ी—"यह आप क्या कर रहे हैं ?"

नवाब लटकन ने कमरे के किवाड़ बंद करते हुए जवाब दिया—"कुछ नहीं, कुछ नहीं, तुम डरो मत !"

"नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। हरगिज़ नहीं हो सकता।"

"क्यों ?" नवाब साहब गर्म पड़े।

"किवाड़ खोल दीजिए, वर्ना अच्छा न होगा।"

वहीदन ने लपककर दरवाज़े की कुंडी खोल दी। वह बाहर निकलना ही चाहती थी कि नवाब लटकन ने उसे हाथ पकड़कर पीछे खींच लिया, और किवाड़ भेड़ दिए।

दोनों में खींच-तान चल रही थी कि अचानक बरामदे में जूतों की आवाज़ सुनाई पड़ी, और कमरे का दरवाज़ा खोलकर शहर-कोतवाल, दो सिपाही और एक बुज़ुर्ग आदमी भीतर दाख़िल हुए।

नवाब साहब ने वहीदन का हाथ छोड़ दिया। उनके चेहरे पर हवाइयाँ उड़ने लगीं। सिर नीचा करके पलँग पर बैठ गए।

"ख़ानबहादुर साहब! आप आज अग़वा करने के जुर्म

में गिरफ़्तार हुए।" कोतवाल साहब ने हाकिमाना ढंग से कहा।

"ऐसा क्यों साहब ?"

"अब भी आप पूछते हैं, ऐसा क्यों? सरीहन मैं आँखों के सामने आपके क़ब्ज़े में एक ग़ैर लड़की को देख रहा हूँ, उस पर भी क्यों का सवाल ?"

"ऐसा नहीं है, जैसा आप ख़याल करते हैं।" ख़ानबहादुर साहब ने ख़ुशामदाना लहजे में कहा—"यह लड़की ख़ुद मेरे यहाँ आ गई।"

कोतवाल साहब ने वहीदन की तरफ़ मुख़ातिब होते हुए कहा—"कहो, क्या बात है ? तुम इनके यहाँ ख़ुद आई थीं ?"

वहीदन ने आग़ाज़ से अंजाम तक सारी बातें कह सुनाईं। तब कोतवाल ने नवाब साहब से पूछा—"कहिए, अब भी आपको कुछ कहना है ? जब आपने इसे नौकरानी की सूरत में रक्खा, तब इसे अब तक ज़नानख़ाने में न भेजकर अपने आरामगाह में क्यों क़ैद किया आपने ?"

"यह सरासर झूठ कहती है।" नवाब साहब गिड़गिड़ाकर बोले—"आप यक़ीन मानिए, यह मेरे कमरे में ख़ुद ही चली आई।"

"आप जुर्म से इनकार करके क़ानून के शिकंजे से बच नहीं सकते ख़ानबहादुर साहब !" कोतवाल साहब ने बेरुख़ाई से कहा—"मैंने आपको गिरफ़्तार किया।"

खानबहादुर साहब ने देखा, मैं अब बच नहीं सकता। मेरी इज्ज़त पर आ बनी है। तब अपनी जगह से उठे, और कोतवाल साहब का हाथ पकड़कर कमरे से बाहर ले आए, और बोले—"जुर्म वाक़ई हो गया है मुझसे। अब आप मुझे माफ़ करें, और मेरे लायक़ जो ख़िदमत हो, उससे आगाह करें। यह बात आप अच्छी तरह जानते हैं कि अगर मैं गिरफ़्तार किया गया, तो मेरी बड़ी बदनामी होगी।"

"बात ठीक कहते हैं आप। मगर आप जानते हैं, अग़वा करने का जुर्म बड़ा संगीन है।"

"मैं मानता हूँ, मगर मेरी ख़िदमत की कोई भी क़ीमत नहीं है क्या? मैं आपको अभी ५००) देता हूँ।"

"नहीं, ५००) में तो काम न चलेगा। आपको कम-से-कम १०००) ख़र्च करना चाहिए।"

"यह तो साहब बहुत है।" नवाब साहब ने गिड़गिड़ाकर कहा।

"जुर्म कौन-सा थोड़ा है।"

"बराहे करम कुछ तो कमी कर लीजिए।"

"अगर यही मरज़ी है आपकी, तो कम-से-कम ६५०) दे दीजिए, इससे ज्यादा कमी नहीं हो सकती।"

नवाब साहब ने सोचा—आबरू पर पानी पड़ रहा है, जुर्म मुझ पर लागू है ही। कोतवाल साहब कुछ ज्यादा नर्म पड़ते नहीं, चलो होगा, देखा जायगा। मैं जी में समझ लूँगा

कि लाट साहब की दावत में बजाय २०००) के ३०००) ख़र्च किए। वह झट बोल उठे—"अच्छा साहब, मुझे मंजूर है।"

दोनो उठकर बाहर आए। कोतवाल साहब बोले—"इफ़्तिख़ारहुसैन ! लड़की को ले जाओ।"

वह बुज़ुर्ग, जिनका नाम इफ़्तिख़ारहुसैन था, वहीदन को लेकर, कमरे से बाहर निकलकर फाटक से होते हुए सड़क पर पहुँचे और चलते-चलते एक सराय में दाख़िल हुए, तब वहीदन बोली—"मामूँ ! तुम कब आए ? घर पर तो थे नहीं।"

"मैं अभी परसों घर पहुँचा। तुम जानती हो बेटी ! कि फ़ौजी नौकरी में छुट्टी जल्दी मिलती नहीं। छ महीने बाद आया हूँ। फिर, घर पर कोई और है नहीं, जिसकी वजह से मुझे घर आने की जल्दी हो। हाँ तो, जब घर आया, तो तुम्हारे मा-बाप के मरने की ख़बर मिली। मैं फ़ौरन् तुम्हारे मकान को चल पड़ा। जब कल वहाँ पहुँचा, तब मुझे पता लगा कि तुम खाने-पीने की तकलीफ़ों से परेशान होकर लखनऊ की तरफ़ आई हो। बस, मैं यहाँ आया, और तुम्हें ढूँढने लगा। अभी शाम के वक़्त कुछ भिखमगे इधर से ही जा रहे थे, और आपस में बातें कर रहे थे कि 'वहीदन की तो ख़ुदा ने सुन ली कि वह नौकर हो गई।' दूसरा बोला—'अजी, तुम क्या जानो, वह नौकर नहीं हुई, उसकी जवानी नौकर हुई है।' मैंने उन लोगों से तुम्हारा पता पूछा। फिर

कोतवाली पहुँचा, तब उस नालायक़ नवाब के पंजे से तुम्हें छुड़ाकर ला सका हूँ। मगर बड़ा तअज्जुब है कि बस्ती में तुम्हारी परवा किसी ने भी न की !"

"अरे मामूँ, कौन किसकी परवा करता है। मैं इन १५ दिनों में ही दुनिया को ख़ूब देख चुकी हूँ कि बस मतलब की है। पास-पड़ोसियों पर मेरे मा-बाप के कौन-से एहसान नहीं थे, मगर किसी ने बात तक न पूछी। आख़िर क्या करती, घर से निकल पड़ी।"

"ख़ैर, होगा, जाने दो। तुमने कुछ खाया भी है या नहीं ?"

"हाँ, मैं खा चुकी हूँ।"

"अच्छी बात है। ख़ैर, तुम अब आराम से लेट रहो। मैंने अभी कुछ नहीं खाया है। मैं बाहर जाकर कुछ खा आऊँ।"

"जाइए, और खाकर जल्द आइएगा। मुझे अकेले डर लगेगा।"

इफ़्तिख़ारहुसैन कोठरी से बाहर चले गए, और बाज़ार में जाकर खाना खाने लगे। जब खाकर वापस आए, तब तक वहीदन जागती रही। अब दोनो आराम से खाटें बिछाकर लेट रहे, और सबेरा होने पर रेल पर सवार होकर अपने गाँव चले गए।

उधर ख़ानबहादुर साहब ने कोतवाल साहब को ख़ासी

रक़म देकर बिदा किया, और सुख की साँस ली। घर के नौकर-चाकरों को यह सब क़िस्सा कुछ भी मालूम न हुआ, क्योंकि वे सब तब तक खाना खाकर सो गए थे।

फ़िदाहुसैन जिलेदार, जो नवाब लटकन के इलाक़े में काम कर रहे थे, स्वभाव से ही कठोर थे। इधर नवाब साहब के आदेशानुसार उन्हें और भी कठोर बन जाना पड़ा। किसानों से लगान के अलावा वे सारी रक़में भी जिलेदार को वसूल करना पड़ती थीं, जा साहब लोगों की दावतों और उनके चंदे में ख़र्च होती थीं। यही कारण था कि जिलेदार साहब अपने असामियों से बहुत ही सख्त बर्ताव किया करते थे।

इस साल किसानों की दोनो फ़सलें ख़राब हो जाने से लगान ही का वसूल होना कठिन हो गया था। फ़िदाहुसैन ने काफ़ी सख्ती भी की, परंतु फल कुछ न निकला। अतः वह इलाक़ की रिपोर्ट देने के लिये नवाब साहब के पास ख़ुद आए।

नवाब साहब ने पूछा—"कहिए मुंशीजो ! इलाक़े का क्या हाल है ?"

"हुज़ूर, इस साल लगान नहीं चलता !"

"क्यों ?"

"बात यह है हुज़ूर कि आपका गाँव बहुत बिगड़ रहा है। साला सकटुआ चमार बहुत ही बदमाश हो गया है। उसी ने सारे गाँव को बिगाड़ रक्खा है।"

"आखिर क्यों ?"

"खुदा जाने क्यों।"

"फिर तुमने उसका कुछ इलाज नहीं किया ? लगान तो अलग रहा, चंदे का भी हिसाब अभी पड़ा हुआ है, वह भी अब बजाय २०००) के ३०००) पर पहुँच गया है। काम कैसे चलेगा ?"

"हुज़ूर, मैंने कोशिश तो भरपूर की, मगर—"

"क्या ?"

"सकटुआ को पूरे ६ घंटे के लिये मुर्ग़ा बना दिया; पीटा भी। लालजी पासी तो बहुत ही अकड़ रहा था, उसे खूब ही धुनका। साला गाँव छोड़कर भी भाग गया, लेकिन लगान नहीं चला।"

"तो इसके मानी यह हैं कि गाँव बहुत ही बिगड़ रहा है।"

"हाँ हुज़ूर, बात तो यही है।"

"ख़ैर, कोई हर्ज नहीं। हम इसका मुनासिब इंतिज़ाम करेंगे। तुम एक काम करो कि बक़ाया लगान की नालिशें दायर कर दो।"

"हाँ, आपने सही फ़रमाया, मगर नालिशें अगर १०-५ हों, तो कर भी दी जायँ, पूरा गाँव-का-गाँव पड़ा हुआ है।"

"बक़ायावाली कुल कितनी असामियाँ होंगी ?"

"कम से-कम १५० तो होंगी ही, सिर्फ़ १०-२० ने ही लगान दिया है।"

"कोई हर्ज नहीं, सब सालों पर दायर कर दो।"

"जैसा हुक्म हुजूर का, मैं कल से ही इसकी तैयारी करूँगा।"

"अच्छा, जाओ। आज मेरे कुछ दोस्तों की दावत है, जाकर इंतिज़ाम में मदद दो।"

मुंशी फ़िदाहुसैन चले गए।

नवाब साहब सोचने लगे—गाँव से पैसा न मिला, तो खर्च कैसे चलेगा?

नवाब साहब के लड़के को, जो अब १६ साल का हो चुका था, और अँगरेज़ी की एफ़० ए० फ़र्स्ट इयर क्लास की शिक्षा प्राप्त कर रहा था, साँप पकड़ने का काफ़ी अभ्यास था। वह यों ही चलते-फिरते साँप को कभी पूँछ पकड़कर लटका लेता, कभी उसके फन पर इस चालाकी और सफ़ाई से पंजा मारता कि साँप बिलकुल बेक़ाबू हो जाता। उसने बहुतेरे साँप पकड़कर क़ैद कर रक्खे थे।

नवाब साहब को अपने लड़के अब्दुलरहीम का यह शौक़ बहुत खलता था, इसलिये वह उसे कई बार डाँट-फट-कार बता चुके थे, मगर उसका नतीजा कुछ भी न हुआ। लड़के ने अपना स्वभाव न छोड़ा। वह जब मौक़ा पाता, अपने पकड़े हुए साँपों के ज़हरीले दाँत भी तोड़ डालता। दोस्तों से वाहवाही लूटने के लिये भी वह साँपों से खेला करता था।

आज नवाब साहब के यहाँ मित्र-मंडली की दावत ख़िताब पाने की ख़ुशी में नियत की गई थी। दोस्त-अहबाब आ-आकर जमा हो रहे थे। बड़ी चहल-पहल थी। बच्चे इधर-से-उधर कूदते फिर रहे थे। कोई गा रहा था, कोई बजा रहा था। जो समझदार थे, वे दो-दो, चार-चार की

टोलियों, में जहाँ-तहाँ बैठे हुए बातें कर रहे थे। कुछ लड़के अब्दुलफ़हीम के भी क्लासफ़ेलो थे। उनमें से कुछ अलग बैठे हुए ग़प-शप कर रहे थे। इसी समय अब्दुल-फ़हीम भी पहुँच गया। साहब-सलामत होने के बाद क़ुद्दूस बोला—"यार! आज तो बड़ा अच्छा मौक़ा है, सब दोस्त जमा हैं, अपने नए साँप दिखाओ। हम लोग भी देखें, कैसे हैं।"

"हाँ, यह तुमने भाई, ख़ूब याद दिलाई।" फ़हीम ने तड़पकर कहा—"मैंने आज ही एक बड़ा ज़हरीला साँप पकड़ा है, और वह बिलकुल सफ़ेद है।"

"तो भई, उसे ज़रूर दिखाओ।" क़ुद्दूस ने फ़हीम का हाथ पकड़कर कहा—"हमने आज तक सफ़ेद साँप नहीं देखा!"

फ़हीम साँप लाने चला गया, और कई पिटारे उठा लाया। लोगों ने जो उसे पिटारे लाते देखा, तो बोले—"फ़हीम! यह क्या करते हो, रात का वक़्त और यह साँपों का खेल!"

"अरे, रहने भी दो यार! यही शग़ल सही। दाँत तो उनके तोड़ ही दिए होंगे।" दूसरे आदमी ने धीरे से कहा।

फ़हीम एक-एक पिटारा खोलकर अपनी मित्र-मंडली को साँप दिखाने लगा। और लोग भी उठकर उसके क़रीब आ गए, और साँपों का मुलाहिज़ा करने लगे। क़ुद्दूस बोला—"फ़हीम! तुमने इन सबके ज़हरीले दाँत तो तोड़ ही दिए होंगे?"

"हाँ, कुछ के तोड़ दिए हैं, कुछ के तोड़ने बाक़ी हैं।"

"अच्छा, तो वह साँप दिखाओ, जिसके दाँत अभी तोड़े न गए हों।"

"नहीं, नहीं। ऐसा न करना। खतरेवाला काम बुरा है।" एक आदमी ने कहा।

दूसरा बोला—"इसमें खतरा किस बात का ? यह तो रोज़ ही दाँत तोड़ते होंगे।"

"ठीक है, मगर यह भी तो सोचो, अगर कहीं हाथ से छूट गया, तब ?" पहले आदमी ने कहा।

"खिलाड़ी के हाथ से कहीं ऐसा हो सकता है ?" दूसरे ने जवाब दिया।

इसी वक़्त फ़हीम ने वही सफ़ेद साँप, जो आज ही पकड़ा गया था, और जिसके दाँत अभी तोड़े न गए थे, फन पकड़कर पिटारे के अंदर से उठा लिया। साँप सारा-का-सारा फ़हीम के बाज़ू पर लिपट गया, और मारे ग़ुस्से के फुफकारने लगा। फ़हीम बड़ी मज़बूती से साँप का फन पकड़े हुए था। उसने फन को और ज़ोर से दबाकर उसका मुँह फैला दिया। साँप अपनी जीभ लपलपाने लगा। इधर तो फ़हीम अपने दोस्तों को साँप के ज़हरीले दाँत दिखा रहा था, और उधर साँप अपनी पूरी ताक़त से फ़हीम का बाज़ू जकड़ रहा था। फ़हीम के बाज़ू में काफ़ी जकड़न होने की वजह से ख़ून का बहाव रुकने लगा। उसे बाज़ू में कुछ-कुछ दर्द का एहसास

हुआ। इस दर्द के होते ही उसका हाथ कुछ ढीला पड़ा। साँप ने फ़ौरन् ज़ोर करके अपना ज़हरीला दाँत उसके अँगूठे में मार दिया। अँगूठे से ज़रा-सा ख़ून निकल आया। लोगों ने जो ख़ून निकलते देखा, तो बोले—"यह क्या? दाँत लग गया क्या?"

दूसरा बोला—"मालूम तो ऐसा ही होता है।"

तीसरा बोला—"फ़हीम! इसके ज़हर की दवा, जो तुम्हें मालूम हो, जल्द करो।"

इतनी देर में ज़हर ने अपना काफ़ी असर जमा लिया, और फ़हीम का हाथ ढीला पड़ते ही साँप छूट गया। वह लहराता हुआ एक ओर चल दिया। इधर फ़हीम को थकन महसूस हुई, तो वह वहीं फ़र्श पर ही लेट गया। अब क्या था, चारों ओर दौड़-धूप होने लगी। नवाब साहब, जो दावत का सामान इकट्ठा करने में लगे हुए थे, दौड़ते हुए आए, फ़हीम की हालत देखकर उनके पैरों-तले की ज़मीन निकल गई, और चीख़कर बोले—"यह क्या हो गया?"

एक आदमी दौड़ता हुआ डॉक्टर साहब के पास गया। डॉक्टर साहब फ़ौरन् आए। उन्होंने आते ही शिग़ाफ़ दिया, मगर फ़हीम की हालत गिरती ही गई। अब तो लोगों को फ़हीम की तरफ़ से ना उम्मेदी-सी होने लगी। नवाब साहब अपना माथा पकड़कर वहीं ज़मीन पर बैठ गए। बोले—"हाय! किए-धरे कुछ न हुआ!"

इतने में जिलेदार मुंशी फ़िदाहुसैन भी आ गए। वह बोले—"भवानीपुर का सकटे चमार इस काम में होशियार है। अगर हुक्म हो, तो उसे बुला लाऊँ सरकार!"

"जब इतने बड़े डॉक्टर कुछ न कर सके, तो सकटुआ बेचारा क्या कर लेगा?" एक आदमी ने कहा।

"नहीं, यह न कहो भाई साहब! मैंने ख़ुद देखा है कि जिन लोगों की नब्ज़ें तक जहर की बदौलत छूट गई थीं, उन लोगों को भी उसने ज़िंदा कर दिया।" फ़िदाहुसैन ने ज़ोर-दार लहजे में कहा।

"तो फिर यही करो। इन बहसों से क्या फ़ायदा?" नवाब साहब ने दर्द-भरे स्वर में कहा—"कार पर चले जाओ।"

मगर वह मुझसे नाराज़ है, शायद न आए।" फ़िदा-हुसैन ने कहा—"अगर आप मुनासिब......"

नवाब साहब ने बात काटकर कहा—"मैं नहीं जाता सुसरे के पास, मुझसे ही कौन-सा ख़ुश होगा वह।"

नहीं, नहीं। अगर ऐसी ही बात है कि वह इस फ़न में होशियार है, तो आपको जाना चाहिए। आपका असामी है। आपका लिहाज़ उसे करना ही पड़ेगा।" एक आदमी ने कहा।

"तो क्या वह ख़ुदा है?" नवाब साहब ने रोते हुए कहा—"जो होना था, हो गया!"

"यह बात नहीं, नवाब साहब! मैंने सुना है, साँप के ज़हर में आदमी की नब्ज़ें छूट जाती हैं, जिस्म ठंडा पड़ जाता है, चेहरे पर बिलकुल मुर्दनी छा जाती है, मगर इंसान मरता नहीं। मरता है, तो पूरे ४८ घंटे बाद।" उस आदमी ने जवाब दिया।

और लोगों ने भी इस ख़याल की ताईद की।

एक तो लड़के का मोह, दूसरे, लोगों के कहने-सुनने से नवाब साहब खुद भवानीपुर जाने को तैयार हो गए। ड्राइ-वर ने कार की टंकी में पेट्रोल डालकर स्टार्ट किया। नवाब साहब बैठ गए, और कार भवानीपुर की ओर चल दी।

रात का समय था। नौ बज चुके थे। जाड़े की ऋतु थी। ठंडी हवा भी तेजी से चल रही थी, और कार भी हवा से बातें करती हुई उड़ी जा रही थी। नवाब साहब हालाँकि इस सरदी से परेशान थे, मगर लड़के की वजह से दिल कड़ा करके चले जा रहे थे। फ़ासला चूँकि १५ मील का ही था, अतः वह २० मिनट में ही भवानीपुर पहुँच गए।

कार कुठार में आकर रुकी। सिपाही खाना खाकर आराम कर रहे थे। कार पर नवाब साहब को आया हुआ देखकर, हड़बड़ाकर उठे। नवाब साहब से ऐसे समय कष्ट उठाने का कारण पूछने पर सिपाहियों को मालूम हुआ कि लड़के को साँप ने काट लिया है, और सकटे चमार की जरूरत है।

एक सिपाही भागता हुआ चमार के घर पहुँचा। नवाब साहब का सारा हाल उससे कहा। वह बोला—"मैं नहीं आता ऐसी रात में। मेरी क्या ग़रज़ पड़ी है, जाड़े में जाऊँ, मरूँ।"

"अरे भाई ! ऐसा न कहो। अपने मालिक हैं। मुसीबत सब पर आती है, फिर आदमी ही आदमी के काम आता है।"

"मुझे वह दिन अभी याद है, जब मुझे मुर्ग़ा बनाया था उनके ज़िलेदार ने। मेरे पैरों में अब तक टीस होती रहती है। तब नहीं सोचा था कि कभी काम पड़ेगा सकटुआ से भी।"

"तुम यही तो नहीं जानते हो भाई सकटे ! अगर आज तुम्हारे हाथों उनके लड़के की जान बच गई, तो मालामाल हो जाओगे।"

"अरे क्यों बहकाते हो ? कौन मालामाल करेगा ? उनके दिल में दया नाम को नहीं। बस, दिखावा-ही-दिखावा है भाई ! मुझे बड़ी सरदी लग रही है। अब तुम जाओ। मैं भी जाकर लेटूँगा।"

"यह भी याद रक्खो कि वह अपने इलाक़ेदार हैं। उन्हीं की रियासत में रहना-बसना है, हमें और तुम्हें।"

"मुझे इसका डर नहीं। मैं तो अब दो-चार दिन में ही यहाँ से दूसरे गाँव में जाकर बसना चाहता हूँ। लालजी चला गया, उसी का किसी ने क्या बिगाड़ लिया ?"

सकटे यह कहकर उठा, और अपने मकान के अंदर चला गया। सिपाही लाचार होकर कुठार आया, और नवाब साहब से सारा माजरा कह सुनाया। नवाब साहब सुनकर पहले तो बहुत गर्म हुए और बोले—"सकटुआ साले की यह जुर्रत !" मगर फ़ौरन् यह भी ध्यान में आया कि मेरे गर्म

होने से काम न बनेगा। अगर यह चला गया तो शायद लड़का फिर ज़िंदा हो जाय, इसलिये बोले—"नसीर! चलो, मैं ख़ुद चलता हूँ।"

नवाब साहब नसीर सिपाही के साथ सकटे के घर पहुँचे। नसीर ने आवाज़ दी—"सकटे! ज़रा बाहर आना। नवाब साहब ख़ुद आए हैं।"

सकटे मकान से बाहर आया। सलाम किया, और बोला—"सरकार! मेरे पैर अब तक सूजे हैं। उनमें बड़ी टीस होती रहती है। बुख़ार भी आ जाता है। इससे मैं न जा सकूँगा।"

"देखो सकटे! मैं समझता हूँ, तुम पर मेरे ज़िलेदार ने ज़ुल्म किया, मगर उसे भूल जाओ, और मुझे माफ़ कर दो! चलो, कार खड़ी है। पैदल चलना न पड़ेगा।"

सकटे ने सोचा, अब क्या करूँ। नवाब साहब अपनी ख़ता भी मान गए, माफ़ी भी चाहते हैं, तो अब इनकार करना ठीक नहीं। बोला—'अच्छा, नहीं मानते हो सरकार! तो चलूँगा।"

यह कहकर सकटे अंदर गया कुरता पहनकर, एक दोहर ओढ़कर बाहर आया, और नवाब साहब के साथ चल दिया। रास्ते में बातों के सिलसिले में उसे मालूम हुआ कि लड़के को सफ़ेद साँप ने काटा है, तो बोला—"सरकार! अब मेरे जाने से काम न बनेगा।"

"क्यों, क्या बात हुई ?"

"मैं सफ़ेद साँप का ज़हर नहीं उतार सकता। मैंने यह किरिया नहीं सीखी है। हाँ, लालजी इस काम में उस्ताद है। उसी ने मुझे भी सिखाया है। वह सफ़ेद साँप का ज़हर भी उतार देगा।"

"नसीर ! लालजी को बुलाओ।"

"हुज़ूर ! वह तो उसी दिन गाँव छोड़कर भाग गया था, जिस दिन पिटा था। उसे यहाँ से गए हुए आज बारहवाँ दिन है। अब वह मोहनपुर में रहता है।"

नवाब साहब माथा पकड़कर बैठ गए। सोचने लगे— जब वह हमारे गाँव से भाग गया, तो उस पर अपना ज़ोर ही क्या रहा। और, अगर वह मुझसे जी-जान से नाराज़ न हो गया होता, तो दूसरे गाँव में भागकर जाता ही क्यों ? हमारा मोहनपुर जाना अब बेकार है। फ़हीम की इतनी ही ज़िंदगी थी। ख़त्म हो गई। जो होना था, हो गया। मगर लड़के की ममता बुरी होती है। उनके जी में फ़ौरन् यह ख़याल आया कि अगर लालजी को कुछ लालच दिया जाय, तो शायद पते पर आ जाय। यह सोचकर ड्राइवर से बोले—"कार स्टार्ट करो।" सकटे से कहा—"चलो सकटे ! मोहनपुर चलेंगे।"

सकटे और नवाब साहब कार पर सवार हो गए। मोहनपुर वहाँ से सिर्फ़ एक मील के फ़ासले पर था। मगर

कच्चा रास्ता होने के कारण पंद्रह मिनट रास्ते में लग गए। आख़िरकार मोटर लालजी के दरवाज़े पर पहुँची।

मकटे ने आवाज़ देकर लालजी को पुकारा। जब वह बाहर निकला, तो उसने देखा, सामने नवाब साहब खड़े हैं। उसने सलाम किया, और इतनी रात में आने का कारण पूछा। सकटे ने सारा हाल कह सुनाया। तब लालजी बोला—"मैं इतनी रात गए नहीं जाने का, फिर पास-पड़ोस का वाक़या होता, तो और बात थी।"

"ऐसी बातें न करो लालजी!" नवाब साहब ने आजुर्दगी से कहा—"मुझे सख्त अफ़सोस है कि सिपाहियों ने उस रोज़ तुम्हें बहुत सताया, और सायद तुम उसी वजह से यहाँ भाग आए हो। मगर चूँकि इस वक़्त मेरा लड़का मौत के मुँह में है, तुम्हें ऐसा न सोचना चाहिए।"

"मैं अब कुछ तुम्हारी रिआया तो हूँ ही नहीं नवाब साहब! अब तो मेरी मरज़ी है, जाऊँ, चाहे न जाऊँ। उस रोज़ तुम्हारी मरजी थी कि मुझे पिटवा डाला। जिसे हमारी हमदर्दी नहीं, हम उसके साथ हमदर्दी करें? ख़ूब रही!"

"नहीं-नहीं, ऐसा न कहो भाई लालजी! मैंने तुम्हारे साथ नाइंसाफ़ी की, मेरी ग़लती माफ़ करो।"

"कैसे माफ़ करूँ? मैं पिटने-कुटने का रंज न सह सका। आख़िरकार अपनी २० बीघा मौरूसी ज़मीन छोड़कर,

यहाँ आकर बस रहा। मेरे जिगर में अब तक उस बेइज्जती का घाव हरा है।"

"अच्छा बोलो, तुम कितनी जमीन चाहते हो? मैं उतनी ही जमीन तुम्हें माफ़ी में दूँगा। मुझसे क़सम ले लो, बशर्तें कि मेरा फ़हीम मौत के मुँह से बच आए।"

लालजी कुछ नर्म हुआ। बोला—"अच्छा, चलने को तो मैं चलता हूँ, मगर मैंने सुना है, मतलबी बावला होता है। वह अपना मतलब बनाने के लिये हर तरह के वादे करता है, मगर उसके सारे वादे झूठे होते हैं। आपके वादे पर कैसे विश्वास करूँ?"

नवाब साहब एक साँस में हजारों क़समें खा गए, और बोले—"लालजी! अगर मेरा लड़का तुम्हारी तरकीब से जी गया, तो मेरा वादा कभी झूठा नहीं होगा। जितनी तुम्हारी मौरूसी जमीन है, सब तुम्हें माफ़ी में दे दूँगा!"

लालजी नवाब साहब के साथ कार पर बैठ गया, और कार बड़ी तेजी के साथ लखनऊ की तरफ़ रवाना हो गई।

आध घंटे में नवाब साहब मकान पर आ गए। पचासों आदमियों की भीड़ लगी हुई थी। फ़हीम बिलकुल मुर्दा-सा पड़ा था। सारा शरीर पीला पड़ रहा था। घर के अंदर औरतें चीख़-पुकार मचा रही थीं। लालजी ने जाकर फ़हीम को देखा। बोला—"सरकार! इनमें तो अब कुछ रहा

नहीं ! मगर देखो: तरकीब करता हूँ। देखना है, क्या फल निकलता है।"

लालजी ने कोई जड़ी अपने पास से निकाली, और उसे खूब बारीक पीसकर नाक में फूँका। वही कुछ थोड़ी-सी पानी में घोलकर मुँह में डाली। कुछ देर बाद साँसें चलती हुई सबको मालूम हुईं। लोगों को कुछ आशा हुई कि शायद अब फ़हीम बच जाय।

लालजी ने दुबारा फिर दवा खिलाई, और साथ ही मंत्र से कुछ झाड़-फूँक भी की। नतीजा यह निकला कि ३-४ घंटे में फ़हीम सचमुच होश में आ गया। अब तो चारों ओर लालजी की तारीफ़ों के पुल बाँधे जाने लगे। खूब खैरातें की गईं। ग़रीबों को खाना बाँटा गया। मगर उस दिन मित्र-मंडली की दावत मुल्तवी कर दी गई। लालजी को नवाब साहब ने उसी समय माफ़ी का परवाना लिख दिया, और सबेरे कार के ज़रिए लालजी को उसके मकान पहुँचा दिया गया।

पं० राधेश्याम मामूली हैसियत के मनुष्य थे। अपनी मेहनत की कमाई की एक-एक पाई लगाकर अपने लड़के मदनमुरारी को बी० ए० पास कराने के बाद वह उसके लिये नौकरी तलाश करने में लगे हुए थे। मगर हर जगह सिफ़ारिश की ज़रूरत पड़ती थी। वह एक दफ़ा इसी सिलसिले में नवाब लटकन से भी मिल आए थे, और उनके वायदे पर आस लगाए बैठे थे। कई महीने बीत गए, मगर कोई ठीक-ठीक जगह लड़के के लिये समझ में न आती थी। वह यही सोचते थे कि किसी सरकारी नौकरी का ढंग दिखाई दे, तो नवाब लटकन से सिफ़ारिश पहुँचाकर लड़के को बहाल कराऊँ। उनको हाल ही में पता चला कि वहाँ के ज़िला-जज का तबादिला हो गया है, और नए आए जज साहब नवाब लटकन के अज़ीज़ों में से हैं।

पं० राधेश्याम ने लड़के से एक ऐप्लीकेशन उनके पास भिजवा दी। होनी की बात कि उसी महीने की २८ तारीख़ को उम्मीदवारों के चुनाव की तारीख़ निश्चित हुई थी। पं० राधेश्याम ने सोचा, अभी आज २१ तारीख़ ही है, सात दिनों का ख़ासा अंतर है। अभी कोशिश की जा सकती है। यही सोचकर शाम के वक़्त पं० राधेश्यामजी नवाब लटकन

के यहाँ पहुँचे। नवाब साहब ने जो देखा, तो तड़पकर बोले—"अखख़ाह! भाई राधेश्यामजी! आइए-आइए। कहिए, मिज़ाज तो अच्छा है जनाब का?"

"हाँ, सब परमात्मा की दया है।" कुरसी पर बैठते हुए पं० राधेश्याम बोले—"कहिए, आप तो कुशल-मंगल से हैं?"

"हाँ भाई साहब, अल्लाह का फ़ज़ल है। अभी १५ दिन हुए, जब फ़हीम को एक बड़े ज़हरीले साँप ने काटा था। मगर ख़ैर, ख़ुदा ने रहम किया कि वह बच गया।"

"कैसे काटा था?" राधेश्याम ने उत्सुकता-पूर्वक पूछा।

"क्या बताऊँ भाई राधेश्यामजी!" नवाब साहब ने कुछ मुँह बनाकर कहा—"उस नालायक़ को साँप पकड़ने का मर्ज़ है। एक सफ़ेद साँप ने उसे काट लिया। बड़ा ही ज़हरीला था भाई वह। सिकेंडों में सारा जिस्म पीला पड़ गया, और लड़का बेहसो हरकत हो गया।"

"फिर क्या किया आपने?"

"मैं कर ही क्या सकता था। डॉक्टर लोगों ने तो सूखा जवाब दे दिया था। मगर मेरे इलाक़े में ही एक लालजी पासी रहता है। भाई! वह इन मामलों में बड़ा ही उस्ताद है। वह आया, और उसने मुर्दे को ज़िंदा कर दिया।"

"क्यों नहीं, विद्या ऐसी ही चीज़ है।" पं० राधेश्याम ने गंभीर होकर कहा—"अब तो अपने यहाँ सर्प-विद्या का केवल नाम-ही-नाम रह गया है। हाँ, सुना जाता है कि बर्मा

और आसाम में अब भी इस विद्या के अच्छे जाननेवाले मौजूद हैं।"

"होंगे भाई, ज़रूर होंगे। मैं पहले इन बातों को बिलकुल झूठ समझता था, मगर नहीं, यह भी सच्चा इल्म है। हाँ, ये बातें तो हो चुकीं। ख़ूब याद आया। आइए, आपको एक नई चीज़ दिखाऊँ।"

नवाब साहब पं० राधेश्याम को एक कमरे में ले गए, जो फ़र्निचर से ख़ूब सजा हुआ था। नवाब साहब ने एक कुरसी की तरफ़ इशारा करते हुए कहा—"देखिए दोस्त! यह कुरसी मैंने अभी-अभी मँगवाई है। ख़ूबी इसकी यह है कि इस पर बैठे-बैठे ही चारों तरफ़ घूम जाइए, आपको क़तई उठना न पड़ेगा।"

पं० राधेश्याम ने कुरसी का मुलाहिज़ा करते हुए कहा—"वाक़ई क़ाबिले-तारीफ़ है। कितने में ख़रीदी?"

"अंदाज़ा कीजिए क़ीमत का।" नवाब साहब ने मुसकराकर कहा।

"मैं भला, क्या अंदाज़ा कर सकता हूँ। मेरे फ़रिश्तों को भी ऐसी चीज़ें नसीब नहीं, और न कभी किसी दूसरे के लिये ही ख़रीदने का मौक़ा पड़ा, तब अंदाज़ा काहे का?"

"मैंने इसे १५०) में मँगवाया है!" नवाब लटकन ने ग़रूर से कहा।

"ठीक है, यह चीज़ इस क़ीमत की ज़रूर होगी। और, यह फ़र्शी क़ालीन भी क्या अभी नई ही मँगवाई है?"

"हाँ, बिलकुल नई ख़रीदी गई। १२००) में आई है। अभी उस रोज़ जब लाट साहब की दावत की थी, तभी कमरा सजाने के लिये ख़रीदी थी।"

"वाक़ई, नायाब चीज़ है। भई, बड़े लोगों को चीज़ें भी ख़ूब मिल जाती हैं। मुझे यहाँ के कई रईसों के यहाँ जाने का वास्ता पड़ा, मगर मैंने आज तक ऐसी क़ालीन किसी के यहाँ न देखी।"

नवाब साहब अपनी तारीफ़ सुनकर फूले न समाए, बोले—"क्यों यार, बहका रहे हो। सच कहना, क्या वाक़ई ऐसी चीज़ है?"

"अरे, मेरी बात झूठ समझते हैं आप! किसी के पास हो, तो दिखाए न।"

"यह कहो कि मौक़े पर मिल गई।" नवाब साहब ने शान-भरे लहज़े में कहा—"मिस्टर सग़ीर कहते थे, सारे बाज़ार में बस यही एक नायाब क़ालीन था।"

"अच्छा, तो यह भाई सग़ीरहुसैन की मारफ़त ख़रीदा गया!" राधेश्याम ने ज़रा ऊँची आवाज़ में ताज्जुब दिखाते हुए कहा—"सचमुच वह बड़ा ही चलता-पुरज़ा और होशियार है। उसकी पैनी निगाह ऐसी चीज़ों पर सात पर्दे फाड़कर पहुँचती है।"

"यही तो हुआ, इसी वजह से मैंने जब-जब साहब लोगों की दावत की, उसी के सिर सारा इंतिज़ाम डाल दिया। फिर वह चाहे सियाह करे या सुफ़ेद, मगर मुझे उसके इंतिज़ाम में हमेशा ही कामयाबी हासिल हुई। अब देखो, वे दोनो क़द्दे-आदम आईने आमने-सामने लगे हैं। हालाँकि मैंने मँगवाए नहीं थे, मगर वह ले आए। मैंने ख़ुशी से इन्हें मंज़ूर कर लिया।"

"यह जोड़ी कितने में आई?"

"सिर्फ़ १२५) में। फिर देखिए, इसके हाशिए पर चारों तरफ़ कितना बढ़िया चौखटा लगा है। ज़रा लकड़ी और उसके काम का मुलाहिज़ा कीजिए।"

"हाँ, देख रहा हूँ। कारीगर ने अपनी सारी कारीगरी इसमें ख़त्म कर दी है।"

"अच्छा आइए, बारहदरी में चलकर बैठें।"

दोनो बारहदरी में आए। नवाब साहब एक कुरसी पर बैठते हुए बोले—"भाई राधेश्यामजी! आज आप कैसे इधर आ निकले?"

"एक ज़रा-सा आपसे ही काम था। आपने यह क्या कहा कि इधर कैसे आ निकले?"

"इसीलिये कि आप कभी-कभी ही आते हैं।"

"बात यह है नवाब साहब! कि घर का अकेला आदमी, उस पर मुहर्रिरी का काम। रात-दिन चक्की पीसना। दम

मारने की फ़ुरसत नहीं। शाम को घर आया। घर की ज़रूरियात को देखा। खाना बना ; खाया और बेहोश-जैसा सो रहा। ऐसी हालत में भला घूमने-फिरने की किसे फ़ुरसत ? एक रोज़ आया, तो आपसे मुलाक़ात न हुई !"

"अच्छा ! मगर भाई, मैं उस दिन मशग़ूल था एक ज़रूरी काम में। आपसे मुलाक़ात न कर सका। माफ़ कीजिए।"

"मुझे कुछ इसकी शिकायत थोड़े है आपसे। हाँ, अगर आप मेरा एक काम कर दें, तो मैं उम्र-भर एहसान न भूलूँ।"

"कहिए-कहिए, ऐसी क्या बात है ?"

"सिफ़ारिश कराना है।"

"किससे ?"

"जज साहब बहादुर से।"

"कैसी ?"

"आपके लड़के मदनमुरारी की अर्ज़ी तो मैंने दे रक्खी है। २८ तारीख़ को चुनाव होनेवाला है। मैं चाहता हूँ, आप एक सिफ़ारिशी चिट्ठी लिख देते, तो लौंडा भी चार पैसे पैदा करने के क़ाबिल हो जाता।"

"ओहो ! तुमने ग़ज़ब किया।" मेज़ पर हाथ मारकर "तब से आए, एक घंटे से ज़्यादा हो चुका, मगर यार ! अब तक ख़ामोश ही रहे। ख़ैर, कोई मुज़ायक़ा नहीं। यह

तो काम बस बना-बनाया ही समझो तुम। एक काम करो, अभी तो ६-७ दिन इलेक्शन में हैं, कल शाम को आ जाना, मैं एक खत लिख दूँगा। अब तो मुंशीजी भी दफ़्तर बंद करके मकान चले गए।"

"ख़ैर, कोई हर्ज नहीं, कल लिख दीजिएगा।"

"हाँ, कल लिख दूँगा, और तुम्हारा काम फ़ौरन् होगा।"

"अच्छा, तो मुझे अब इजाज़त दीजिए, मैं कचहरी से उठकर सीधा यहीं चला आया था।"

"शौक़ से जाइए, मगर कल आइएगा ज़रूर।"

पं० राधेश्याम आदाब बजाकर अपने घर चले गए।

नवाब लटकन सचमुच थे लटकन ही। जो कोई उनके पास किसी मतलब से आया, उसे लटका दिया। और, ख़ुद जिस काम को पसंद करते, उसमें ख़ुद ही लटक जाते; चाहे वह काम उनके दीन और शरा के ख़िलाफ़ ही क्यों न हो। ज़ाहिरदारी में वह पारसा थे, मगर उसकी पाबंदी मानो उनकी आदत से दूर थी। वह ऐयाश परले सिरे के थे, मगर उनकी ज़बान हमेशा इन बातों के ख़िलाफ़ ही खुलती थी। उनके इस रवैए को उनके इने-गिने दोस्त ही जानते थे, जो रोज़ाना उनसे हम-निवाला हम-प्याला रहा करते थे।

जब पं० राधेश्याम चले गए, तब क़रीब-क़रीब रात के आठ बजे थे। उनके जाते ही यार लोग जमा होने लगे। विलायती, देसी शराब की बोतलों के कार्क खुलने लगे, और शराब प्यालों में उँडेली जाने लगी। ख़ूब दौर चले।

इसी बीच में एक साहब, जिनका नाम बेदार था, बोले—"हाँ, ख़ूब याद आया नवाब साहब! हमारे पड़ोस में एक साहब का गौना होकर अभी-अभी आया है। जोरू क्या है, बस हूर समझिए हूर! मेरी बीवी की उससे राह-रस्म हो गई!" शराब का एक घूँट नीचे उतारकर और गज़क मुँह में दाबकर वह फिर कहने लगे—'मैंने भी उसे

देखा है। ख़ुदा जानता है, दिल क़ाबू में न रहा। मैंने सोचा, ऐसा बढ़िया माल आपकी नज़र क्यों न किया जाय। मैंने सुई-तागा दौड़ाना शुरू किया। आख़िरकार मेरी बीवी ने ही उसे ५०) पर राज़ी कर लिया।"

"तो क्या हाथ मार गए उस्ताद ?" नवाब साहब ने शराब का प्याला मुँह से लगाते हुए कहा।

"नहीं, आप समझे नहीं। मैं ग़रीब, भला कहाँ से लाता पचास रुपए ! उसे आपके हक़ में राज़ी कर लिया। उसने कहा, जिस दिन मेरा शौहर घर पर न हो, उस दिन अगर नवाब साहब मुझे बुलाएँ, तो मैं जा सकती हूँ, क्योंकि बड़े, आदमियों से यारी जोड़ना कुछ बुरा नहीं है।"

नवाब साहब बेदार की बातें सुनकर मचल गए, और बोले—"अगर ऐसी बात है बेदार ! तो तुम उसे लाते क्यों नहीं। कहाँ साले ५०) आते हैं, कहाँ जाते हैं। बोलो, कब लाओगे ?"

"अगर आप कहें, तो मैं आज ही ले आऊँ। आज उसका ख़ाविंद कानपुर गया है, और कल वापस होने को कह गया है।"

"ज़रूर ! ज़रूर !! बस, आज ही सही। अच्छा, अब तुम उठो, और जाओ। तुम्हें आने-जाने में कम-से-कम दो घंटे लग ही जायँगे। तब तक १० बजेंगे। देर न करो !"

बेदार उठा, और फ़ौरन् कमरे से बाहर निकल घर की तरफ़ चल दिया।

लखनऊ-ऐसे शहर में रंडियों की तादाद बहुत काफ़ी है। कुछ रंडियों ने अपनी रोज़ी कमाने का एक नया ढंग निकाल रक्खा है कि वे किसी-न-किसी रईस की मक़बूज़ा बीबी बनकर उसके घर में रहने लगती हैं। अब बाहरवाले अनजान लोग उन्हें देखकर उन पर रंडी होने का संदेह ही नहीं लाते। ऐसी रंडियों ने कुछ स्त्री और पुरुष अपने दलाल बना रक्खे हैं, जो उन्हें विवाहिता बताकर दूसरों को ठगते हैं। मूर्ख ऐयाश उन्हें घर-गृहस्थ औरत समझकर, ख़ासी रक़म देने पर राज़ी होकर उनसे अपना काला मुँह करके अपने को धन्य समझते हैं।

बेदार भी ऐसी ही रंडियों के दलाल हैं। जब रात के १० बजे का समय हुआ कि ताँगे पर एक रंडी को बिठाकर हज़रत बेदार नवाब साहब की कोठी पर आ धमके।

नवाब साहब ने देखा, तो फूल उठे। औरत की उम्र अभी केवल १६ वर्ष की थी। जवानी, उस पर रंग-रूप, नाज़ो अदा से भरपूर। फिर भला, नवाब साहब क्यों न फिसल पड़ते। बेदार ने कहा—"नवाब साहब! यह चाहती हैं कि हम यहाँ से सबेरे चार बजे अँधेरे ही चली जायँ। कोई यह न जान सके कि हम कहीं बाहर गई थीं।"

नवाब साहब सिर हिलाकर बोले—"ठीक है, ठीक है। इनका खयाल बिलकुल ठीक है।"

कोठी का दरवाज़ा बंद हो गया, और बेदार अपने घर चला आया।

रात गुज़र गई। सवेरे ३ बजे अँधेरे से ही दो पुलिस-कानिस्टिबिल कोठी के सामने आकर टहलने लगे। ठीक चार बजे सबेरे हज़रत बेदार भी पहुँचे। उधर नवाब साहब भी घड़ी का अलार्म सुनकर चैतन्य हो चुके थे। कोठी का दरवाज़ा खुला, और मियाँ बेदार अंदर दाख़िल होकर बोले—"नवाब साहब! ग़ज़ब हो गया! इसका शौहर कमबख़्त कल रात ही ११ बजे कानपुर से वापस आ गया। उसने जब इसे मकान पर न पाया, तो इधर-उधर तलाश किया। आख़िर इसका पता उसे चलता, तो कहाँ चलता। मजबूरन् उसने रिपोर्ट थाने में लिखाई। रात-भर पुलिस दौड़ी-दौड़ी फिरती रही। किसी कमबख़्त की फूटी आँखों ने इसे मेरे साथ आते हुए देख लिया होगा। बस, फिर क्या था। पुलिस मेरी टटोल में मेरे घर पहुँच गई, और इधर आपके यहाँ भी आई। मैं बड़ी चालाकी से घर से बाहर निकलकर इधर भागा। वह सिर्फ़ इस ख़याल से कि अगर आपकी इज़्ज़त पर पानी पड़ गया, तब तो सब कुछ बंटाढार हो जायगा। वह देखिए, सामने, बाहर दो कानिस्टिबिल टहल रहे हैं।"

यह दास्तान सुनकर नवाब साहब के होशो-हवास जवाब दे गए। घबराकर बोले—"तब क्या करना चाहिए बेदार ?"

"किसी तरह इन कानिस्टिबिलों को अभी राजी कर लीजिए, नहीं तो कोई पुलिस-अफ़सर आ गया, तो बड़ी मुश्किल होगी।"

"अच्छा, तो उन्हें बहुत जल्द यहीं बुलाओ।"

बेदार कानिस्टिबिलों के पास आकर उन्हें बुला ले गया। नवाब साहब उस समय थर-थर काँप रहे थे। झट से सेफ़ खोलते हुए बोले—"मैं चाहता हूँ, तुम दोनो जल्द-से-जल्द पहरा यहाँ से हटा दो। बोलो, क्या चाहते हो ?"

एक बोला—"पीछे दारोग़ाजी आ रहे हैं। कैसे बताऊँ ?"

"नहीं, जल्द बोलो। तुम यहाँ से फ़ौरन् जाकर उनसे कहो, यहाँ कोई नहीं है। बोलो, क्या चाहते हो ?"

दूसरा बोला—"अच्छा, ५००) ही दे दीजिए।"

"अरे, इतनी लंबी रक़म !" नवाब साहब ने घबराकर कहा।

'तो क्या आपकी इज़्ज़त थोड़ी है ?" उस सिपाही ने जवाब दिया।

नवाब साहब ने सोचा, हुज्जत करने में वक़्त ख़राब होगा। न-जाने फिर क्या आफ़त आए। "मरता क्या न करता।" झट सेफ़ में से १००)-१००) के पाँच नोट निकालकर दे दिए। सिपाही दोनो चले गए। बेदार ने भी रंडी

को अपने साथ लिया, और कोठी से बाहर निकलकर चल दिए। नवाब साहब का धड़कता हुआ दिल अब ठिकाने पर आया, और उन्होंने सुख की साँस ली। चौराहे से आगे बढ़कर—

बेदार, रंडी और दोनो कानिस्टिबिलों ने यह ५००) और रंडीवाले ५०) को अपनी हिस्साकशी की शरह के मुताबिक़ आपस में बाँट लिया।

अब्दुलफ़हीम खिलाड़ी होने पर भी बड़ा ही समझदार था। उसे पढ़ने-लिखने में बड़ी दिलचस्पी थी। उसने अपनी तेज़ फ़हमी की वजह से बहुत थोड़ी उम्र में अर्थात् सोलह साल में ही बी० ए० की डिग्री प्राप्त कर ली।

बी० ए० करने के बाद उसकी तालीम बंद हो गई, और वह घर पर निठल्ला रहने लगा। उसने बारीकी से नज़ीरा और अपनी सौतेली मा के तौर-तरीक़ों पर नज़र डाली, तो बड़ा दुखी हुआ।

उसके दिल को चोट लगी। सोचने लगा—यह तो बड़े ही कलंक की बात है। जब हम-सरीखे लोगों में ही ऐसी गंदगी भरी रहेगी, जो अपनी इज़्ज़त की डींगें मारा करते हैं, तब तो सब कुछ चौपट हो जायगा। यही सोचकर वह नवाब साहब के पास आकर बोला— "वालिद साहब! आपने नज़ीरा और नई अम्मीजान के चाल-ढाल पर कभी कुछ ग़ौर किया? अगर नहीं, तो बड़ा तअज्जुब है।"

"क्या?"

"मैं इससे ज्यादा आपसे और क्या अर्ज़ करूँ।"

नवाब साहब सुनकर कुछ देर ख़ामोश बैठे रहे, फिर उठे,

और सीधे नई बेगम साहबा के कमरे में पहुँचे। बोले—"नज़ीरा कहाँ है ?"

"बाज़ार गया है। कहिए, कुछ काम है क्या ?"

"काम तो कुछ नहीं है, मगर तुमसे एक बात कहनी है।"

"कहिए।"

"बुरा तो न मानोगी ?"

"नहीं-नहीं, बुरा क्यों मानूँगी। शौक़ से कहिए।"

"मेरे कानों में यह आवाज़ आई है कि नज़ीरा की तुम पर नज़र है ! अगर यह बात ठीक है, तब तो बहुत ही बुरा है।"

"वाह ! यह खूब रही !" लेडी साहबा ने ज़रा मुसकराकर कहा—"आपसे कहा किसने ?"

"किसी ने भी कहा, पहले यह बताओ कि यह झूठ है क्या ?"

"झूठ ! सोलह आना झूठ ! ! आपसे कहा किसने ?"

"जब झूठ ही है, तब कहनेवाले का नाम पूछने से ग़रज़ क्या ?"

"नहीं-नहीं, नाम तो मैं ज़रूर पूछूँगी। आख़िर यह तोहमत मेरे सिर मढ़ी किसने ?"

"नाम पूछकर करोगी भी क्या ?"

"नहीं, तुम्हें मेरी क़सम, नाम ज़रूर बता दो। मैं भी तो जान लूँ कि मेरा वह दुश्मन है कौन ?"

"अच्छा सुनो, मुझसे आज ही फ़हीम ने कहा है।"

"ओह! मैं समझ गई।" बेगम साहबा ने ज़रा तमककर कहा—"उनके भी रंग निराले हैं। मैंने सोचा था, कौन उनकी शिकायत करे, उसी का यह नतीजा!"

"कैसी शिकायत ?"

"बस, उनकी हरकतें कुछ पूछिए मत!"

"नहीं-नहीं, बताओ तो, क्या बात है ?"

"क्या कहूँ आपसे।" आँखों पर आँचल रखकर बोलीं—"पहले यह बताइए कि मैं आपकी बीवी हूँ या उस नालायक़ की ?"

"ऐं! तुम यह क्या कह रही हो ?" नवाब साहब ने गर्म होकर कहा—"क्या उसने तुमसे कोई बेजा हरकत की ?"

"बेजा हरकत वह बेचारे मुझसे कर ही क्या सकते थे! हाँ, उन्होंने हाथ डालने की काफ़ी कोशिश की। जब मैं उनके पते पर न आई, तो मुझे तोहमत लगाकर बदनाम ही कर बैठे।" लेडी साहबा ने बनावटी रोनी सूरत बनाकर कहा—"ख़ैर! मुझे मायके भेज दीजिए। मैं इस घर में रहने से बाज़ आई।"

नवाब साहब गर्मजोशी के साथ उठे, और बाहर चले आए। बाहर फ़हीम नहीं था, अतः नवाब साहब ख़ामोशी के साथ अपने कमरे में जाकर पड़ रहे।

क़रीब-क़रीब दो घंटे गुज़र गए। शाम के ६ बजने का

समय आ गया। अब तक फ़हीम वापस न आया था। नूरू ने हाज़िर होकर नवाब साहब को आदाब बजाया। नवाब साहब ने पूछा—"कौन हो तुम ?"

"मेरा नाम नूरबख्श है नवाब साहब !"

"यहाँ कैसे आए ?"

"आपसे कुछ पोशीदा बात कहने।"

"कैसी ?"

"नवाबज़ादा अब्दुलफ़हीम के मुताल्लिक़।"

"कहो, क्या कहना चाहते हो ?"

"आप दौलतख़ाँ साहब को तो जानते ही हैं।"

"हाँ, जानता हूँ।"

"बस, मेरा भी मकान उन्हीं के क़रीब है। आज ख़ाँ साहब घर पर नहीं थे। आपके साहबज़ादे उनके अहाते में पहुँचे। उनकी लड़की असग़री भी अहाते में ही थी। साहब-ज़ादे भी तो नए जवान ही ठहरे। उससे कुछ ऐसा-वैसा कह बैठे। वह सुनकर गर्म हो गई, और उसने एक क़यामत पैदा कर दी। अब आओगे, तो जाओगे कहाँ ? लोगों ने उन्हें चारों ओर से घेर लिया। मैं भी दौड़ता हुआ पहुँचा। जब मैंने उन्हें पहचाना, तो लोगों को समझा-बुझाकर राज़ी किया, और उन्हें बाहर निकाल दिया। नवाब साहब ! कितनी बुरी बात है ! लोग सुनेंगे, तो क्या कहेंगे ? आपकी इज़्ज़त शहर में बहुत बड़ी है।"

"यह सब आज की ही वारदात है?" नवाब साहब ने आज़ुर्दगी के साथ कहा।

"अजी साहब! आज की, आज की! अभी कोई दो घंटे हुए होंगे। आप ज़रा उन्हें समझा-बुझा दें। मैं बस यही कहने आया था। अब जाता हूँ। आदाब।"

नूरू चला गया। नवाब साहब सारी दास्तान सुनकर सन्न रह गए। चिराग़ जले फ़हीम भी घर आया। नवाब साहब ने उस रोज़ उससे कुछ नहीं कहा, अपने दिल में ही घुटते रहे।

---

[१३]

नज़ीरा अपनी सरकार साहबा के कमरे की तरफ़ जा रहा था कि नवाब साहब ने पुकारकर कहा—"क्यों बे नज़ीरा! अब तो हर व़क्त छैला बना रहता है तू?"

"हुज़ूर! मैं क्या छैला बनता हूँ!" नज़ीरा ने खड़े होकर कहा।

"मैं यही तो देखता हूँ कि तेरी एक नई पोशाक रोज़ ही बनती है, और हर वक्त़ तू लक़-दक़ ही रहता है। मालूम होता है, अब आपे में नहीं है तू!"

लेडी साहबा कमरे के दरवाज़े पर आ गईं। उन्हें देखते ही नज़ीरा बिना कुछ जवाब दिए कमरे में दाख़िल हो गया। लेडी साहबा ने नवाब साहब से कहा—"नज़ीरा को खरी-खोटी क्यों सुना रहे हैं आप? जो कुछ कहना हो, मुझसे कहिए।"

नवाब साहब भी अंदर कमरे में मसहरी पर बैठते हुए बोले—'एक ख़िदमतगार को इस तरह नहीं रहना चाहिए, जैसे यह रहता है।"

"क्यों, यह कैसे रहता है?" लेडी साहबा ने ज़रा रुख़ बदलकर कहा।

"देखती नहीं हो क्या? नौकर को ऐसा लक़-दक़ रहना चाहिए? हर वक्त एक उजली, नई पोशाक, बालों में लेवेंडर, कपड़ों में इत्र! यह सब आता कहाँ से है?"

"तो क्या ये चीज़ें सिर्फ़ आप ही इस्तेमाल कर सकते हैं? वह आदमी नहीं है क्या?"

"आदमी सही, मगर है तो हमारा टुकड़ख़ोर नौकर ही।"

"हुआ करे, मगर मेरी ख़िदमत में रहता है।"

"इससे मतलब?" नवाब साहब ने ज़रा आँख बिगाड़कर कहा।

"मतलब यह कि मैं अपने आदमी को गंदा और मैला रखना पसंद नहीं करती। जैसा चाहती हूँ, रखती हूँ।"

"तो यह तुम्हारा आदमी है?"

"तुम चाहे जो कुछ समझो।"

"सुनता है बे नज़ीरा! आज से तू इनके पास नहीं रह सकेगा बदमाश!" नवाब साहब ने तैश के साथ खड़े होकर कहा—"और, तुम भी मेरी आँखों में अब धूल डालकर इस साले के साथ मौजें न उड़ा सकोगी। मैं बहुत दिनों से तुम दोनो की हरकतों को बारीकी से देख रहा हूँ, समझीं।"

"किसी में ताक़त नहीं, जो नज़ीरा को मेरे पास आने में रोक-थाम कर सके।" लेडी साहबा ने गर्म होकर कहा।

"है, ताक़त है, मुझमें ताक़त है। देखें, साला कैसे आता है? अगर आए, तो साले को जान से मार डालूँ।"

"कौन ? तुम ! ज़रा अपना मुँह तो देखो। तुममें ताक़त है रोकने की! ज़रा ख़ुदा के लिये आपे में रहकर बात करो।" मुँह बिगाड़कर वह बोलीं—"समझ लेना फिर तुम्हारी जान की भी सलामती नहीं है।"

नवाब साहब ज़रा डरपोक भी थे। उन्हें अपनी ज़िंदगी बहुत प्यारी थी। कुछ नर्म होकर बोले—"इसमें बड़ी बदनामी है, जैसा कुछ तुम्हारा रवैया है।"

"ख़ुदरा फ़ज़ीहत, दीगरा नसीहतवाली मसल न करो, पहले नेकनामी-बदनामी को अपने दिल से पूछो।"

"वाह! यह एक ही रही! मेरी चाल-ढाल क्या ख़राब है?"

"कह दूँ?"

"ज़रूर कहो।"

"क्या यह जायज़ है कि इसकी बीबी पर तुम अपना क़ब्ज़ा करो? क्या यह जायज़ है कि एक ग़रीब भिखारिन लड़की की असमत के तलाशी बनो? क्या यह जायज़ है कि रोज़-रोज़ रंडियों और बाज़ारू औरतों को बुलाकर गुलछर्रे उड़ाओ?" लेडी साहबा ने बड़ी गर्मजोशी के साथ कहा—"और, अगर मेरी ही वजह से तुम्हारी बदनामी है, तो मुझे तलाक़ देकर घर से निकाल दो, फिर देखूँगी, कैसे सुख की नींद सोते हो?"

नवाब साहब ने सोचा, अब मामला बहुत बेढंगा होता जा रहा है, इसलिये फ़ौरन् कमरे से बाहर निकल आए, और बैठकख़ाने में चले गए।

मियाँ-बीवी की यह हू-हक़ नजमा के भी कानों में पड़ गई थी। उसकी मा आजकल अपने मायके चली गई थी। घर में सिर्फ़ नवाब साहब की मा थी, जो कानों से बहुत ऊँचा सुनती थी। नजमा अपनी सौतेली मा के कमरे में आई, और बोली—"अम्मीजान! यह कैसा झगड़ा हो रहा था अब्बा से?"

"कुछ नहीं, वह मुझ पर नुक़ताचीनी करने लगे। मैंने उनकी सारी बख़िया उधेड़ डाली।"

"हाँ, मैं भी सुन रही थी अम्मी! है तो बड़ा अंधेर; बुड्ढे होने को आए, मगर शरम छूकर भी न निकली।"

"तुम्हें मालूम है बेटी! ज़िंदगी वही है, जो ऐश-आराम से कटे। जिस ज़िंदगी में कुढ़-कुढ़कर मरना पड़ा, उससे तो मौत कहीं अच्छी है।"

"यह तुम ठीक कहती हो अम्मीजान!"

नज़ीरा पान लेने के लिये बाहर चला गया।

थोड़ा ठहरकर मेम साहबा ने नजमा से पूछा—"क्यों, नूरू तुम्हें पसंद है?"

"पसंद की क्या पूछती हो?" नजमा ने मुसकराकर कहा—"उम्र में, सूरत-शक्ल में, तंदुरुस्ती में, सभी बातों में

अच्छा है। बातें तो उसकी बड़ी ही मीठी हैं। कमी क्या है कि पढ़ा-लिखा क़तई नहीं है।"

"नज़ीरअहमद क्या पढ़ा था ? देखो, मैंने उसे पढ़ा लिया कि नहीं। अब उर्दू तो खूब ही लिख-पढ़ लेता है। आगे चलकर मैं उसे थोड़ी-सी अँगरेज़ी भी पढ़ा लूँगी। तुम भी नूरू को पढ़ाने की कोशिश करो।"

"मगर नज़ीरा तो हर वक़्त तुम्हारे पास रहता है। मुझे ऐसा मौक़ा कहाँ हासिल है।

"अगर मानो, तो एक बात कहूँ।"

"कहो, कहो। भला, तुम्हारी सलाह न मानूँगी ?"

तुम नूरू के साथ भाग जाओ।"

"अरे ! यह तुमने क्या कहा अम्मी !" नजमा ने ठंडी साँस भरकर कहा—"मुझे यहाँ से भाग जाने पर किसी का भी रंज न होगा। होगा, तो सिर्फ़ तुम्हारा।"

"तुम मेरा भी रंज क्यों करोगी नजमा !" नजमा का हाथ पकड़कर बेगम बोलीं—"मेरी भी ज्यादा दिनों अब इस घर में गुज़र न होगी। मैं भी जब मौक़ा देखूँगी, नज़ीर के साथ भाग निकलूँगी। तुम जहाँ जाना, वहाँ से अपना नाम बदलकर मेरे पास खत भेजती रहना। मैं भी मौक़े पर वहीं आ जाऊँगी।"

"मगर तुम यह भी तो सोचो, दुनिया मेरे लिये क्या कहेगी ! एक पढ़ी-लिखी लड़की, और एक कुपढ़ के साथ ?"

"उँह ! तुमने भी एक ही कही ! कह तो दिया, पढ़ा लेना। उसकी माहवार आमदनी भी कुछ कम नहीं है। महीने-भर के खर्च के लिये ७०-८० रुपए थोड़े हैं क्या ?"

"खैर देखा जायगा। ज़रा इस मसले पर सोच-विचार लूँ।"

---

[१४]

दिन का तीसरा पहर था, जब नवाब साहब और उनकी लेडी साहबा की तू-तू मैं-मैं हुई थी। बाहर आकर अपने कमरे में खामोशी के साथ लेटे हुए सोचने लगे—"नई शादी करके तो मैं आफ़त में पड़ गया। किसे खबर थी कि यह इतनी बदखसलत निकलेगी। इस चुड़ैल को मेरी इज्ज़त की ज़रा भी पासदारी नहीं! लौंडे से वास्ता जोड़ते शर्म भी तो न आई उसे! उस पर मुँह दर मुँह करती है मुबाहिसा! क्या .खूब! कहती है, घर से निकाल दो! तलाक़ दे दो! मैं ऐसा बुद्धू तो हूँ नहीं कि तलाक़ देकर मेहर का दावा अपने ऊपर कराऊँ! अच्छा, खैर, रह तो सही, मैंने भी सोच रक्खा है। तुझे ऐसा सबक़ दूँ कि तू भी याद करे। और हाँ, ठीक है। नज़ीरा साला भी जान गया कि उसकी बीवी मेरे पास रहती है। तभी मरदूद ने यह चाल खेली। अगर मैं उसकी मनकूहा पर हाथ न डालता, तो शायद वह भी ऐसी हरकत न करता। मगर मैं क्या करूँ। मैंने जान-बूझकर उसकी बीवी को नहीं अपनाया। मैं उसके दिलफ़रेब हुस्न को देखकर पागल हो गया। मजबूरी में ही मैंने उस पर हाथ डाला। हालाँकि मैं समझता हूँ, वह अब भी मेरे पंजे में रहते हुए .खुश नहीं है।

"इधर नजमा भी पूरे १८ साल की हो गई। शादी कर देने के क़ाबिल है। नज़ीरा का घर में क़दम जमा हुआ ही है, वे दोनो हमनिवाला हमप्याला हैं। अगर नज़ीरा ने नजमा की आबरू लेनी चाही, तो वह बहुत जल्द कामयाब हो सकता है। ख़ैर, मैं अब जल्द-से-जल्द नजमा की शादी कर देने का प्रोग्राम बनाऊँ, उसके बाद, किसी दूसरे काम में हाथ डालूँ, यही मुनासिब है।

"वह चुड़ैल घर में बैठी-बैठी मेरे चाल-चलन पर नुक़ता-चीनी करती है। यह नहीं जानती कि हम मर्द हैं। मर्दों के चाल-ढाल कुछ भी हों, उससे ख़ानदान में कोई दाग़ लगता है? फिर हम तो नवाब-घराने में पैदा हुए हैं। अमीरों, नवाबों का तो हमेशा से यही शग़ल रहा है। मुग़लिया ख़ानदान में जितने भी बादशाह गुज़रे, सबका यही दस्तूर रहा। मगर उनमें से किसके नाम पर बुराई थोपी जाती है? कमबख़्त कहीं की! अपनी हरकतों पर शरमाती नहीं, हमारे ऊपर आवाज़ा कसती है। अच्छा ख़ैर, देखा जायगा। तू भी समझेगी, किसी भले आदमी से पाला पड़ा था।"

नवाब साहब अपने ख़याली समुद्र में यों ही डूबते-उतराते बह रहे थे कि पं० राधेश्यामजी आ गए। शाम के सात बज चुके थे। उन्होंने आकर नवाब साहब को सलाम किया, और एक कुरसी खींचकर बैठ गए।

नवाब साहब भी पलंग से उठे, और क़रीब की कुरसी पर आकर बैठ गए। नवाब साहब के चेहरे के ख़तो ख़ाल इस बात की गवाही दे रहे थे कि वह इस समय गहरी चिंता में डूबे हुए हैं। पं० राधेश्याम ने कहा—"कहिए, आपका मिज़ाज कैसा है?"

"अच्छा हूँ। अल्लाह का फ़ज़ल है।"

"चेहरे पर कुछ चिंता ज़ाहिर हो रही है आपके।"

"नहीं-नहीं, कोई ख़ास फ़िक्र नहीं है।" नवाब साहब ने अपनी परेशानी छिपाते हुए मुसकराकर कहा—"कुछ यों ही इलाक़े की उलझनों ने तबीयत को परेशान बना रक्खा है। मैं बाहर ही जाने की तैयारी कर रहा था कि आप तशरीफ़ ले आए।"

"तो आज तो चिट्ठी लिख दें आप।"

"हाँ-हाँ, आपकी वजह से तो ठहरा ही रहा। लाइए, अभी लिख दूँ। आज मुंशीजी से लेटर-पैड और लिफ़ाफ़े लेकर मैंने पहले ही रख दिए थे।"

"तो क्या फ़ौनटेनपेन दूँ?" पं० राधेश्याम ने उत्सुकता से कहा।

"नहीं, ख़त का मज़मून? आपने तो बना ही लिया से होगा?"

"नहीं, मैंने तो कोई मज़मून नहीं बनाया!" पं० राधेश्याम ने अकचकाकर कहा।

"अरे, ग़ज़ब किया आपने ! मुझे क्या ख़बर कि अभी तक आपने मज़मून नहीं बनाया।"

"तो ख़ैर, मज़मून न सही, वैसे ही लिख दीजिए।"

"यह आपने एक ही कही।" नवाब साहब ने बनावटी मुसकान के साथ कहा—"सिफ़ारिशी ख़त और बिला मज़मून बनाए ही ?"

"तो ख़ैर, मैं अभी मज़मून बनाता हूँ।" जेब से क़लम-काग़ज़ निकालते हुए पं० राधेश्याम ने कहा—"मज़मून बनाते कितनी देर लगती है।"

"भाई राधेश्यामजी ! आप नहीं समझते, सिफ़ारिशी ख़त लिखना कोई हँसी-खेल नहीं है। लिखा जाय, तो ऐसा लिखा जाय कि तीर निशाने पर पहुँचे। इसके लिये काफ़ी ग़ौरो ख़ौज़ करना पड़ेगा। अच्छा ख़ैर, रहने दीजिए। अब आप कल इसी वक़्त तशरीफ़ ले आवें। मैं ख़ुद फ़ुरसत के वक़्त मज़मून बनाकर ख़त लिख रक्खूँगा।"

"ख़ैर, जैसी आपकी मरज़ी। मैं चाहता हूँ, कामयाब हो जाऊँ।"

"कामयाब तो आप हैं ही। इसके लिये सोच-विचार करने की क्या ज़रूरत ? वह तो काम मेरा अपना ही है।"

पं० राधेश्याम सुनकर ख़ुश हो गए और बोले—"बस, यही मुझे चाहिए। अभी छ दिन बाक़ी हैं।"

"अरे, छ दिन तो बहुत हैं ! अगर एक घंटा पहले का भी

वक़्त हो, तब भी तो तुम्हारा काम बन सकता है भैया राधेश्याम !"

राधेश्याम प्रसन्न चित्त उठे, और सलाम करके अपने घर चले आए।

---

[१५]

दूसरे रोज़ जब पंडित राधेश्याम शाम को नौकरी से फ़ुरसत पाकर घर आए, तो उनके सिर में हलका-हलका दर्द हो रहा था। वह आते ही खाट पर चुपचाप पड़ रहे। इतने में मदन-मुरारी भी बाहर से आया, और बाप के पास जाकर उसने पूछा—"बाबूजी! आज २४ तारीख़ हो गई, आप नवाब साहब से सिफ़ारिशी ख़त नहीं लाए? अब तो चार ही दिन बाक़ी हैं चुनाव के!"

पंडितजी ने एक ठंडी साँस लेकर जवाब दिया—"पराए हाथ का काम, क्या करूँ, मेरा बस नहीं चलता। दो रोज़ से बराबर दौड़ रहा हूँ। कल शाम को भी गया था। नवाब साहब से भेंट नहीं हुई। आज जी अच्छा नहीं है, मगर थोड़ी देर में, जैसे भी होगा, जाऊँगा—सब्र करो। उम्मीद है, उन्होंने चिट्ठी लिखकर ज़रूर रख छोड़ी होगी।"

"कहीं वह ऐन मौक़े पर धोखा न दें, बड़े आदमी हैं।"

"ऐसी उम्मीद तो नहीं है, आगे ईश्वर की जैसी मरज़ी।"

"मतलब यह है कि अगर उनसे काम न बनता हो, तो कोई दूसरा ज़रिया तलाश करूँ?"

"नहीं-नहीं, ऐसा न होगा। वह बड़े नेक-दिल हैं। परसों

ही तो उन्होंने मुझसे .खुद ही काम बनाने का पक्का वादा किया है।"

;"तो .खैर, कोई बात नहीं।"

बाप-बेटे में ये बातें हो ही रही थीं कि छोटी लड़की ने आकर कहा—"पिताजी, भोजन तैयार है।"

दोनो बाप-बेटे उठे। खाना खाया। पं० राधेश्यामजी कपड़े पहनकर नवाब साहब के यहाँ पहुँचे। मालूम हुआ, नवाब साहब अंदर घर में हैं। पंडितजी आराम से एक कुरसी पर बैठ गए। बैठे-बैठे आध घंटा व्यतीत हो गया, तब नवाब साहब बाहर निकले। साहब-सलामत होने पर नवाब साहब ने कहा—"आप कल आए तो होंगे ज़रूर, मगर मैं बड़े ही ज़रूरी काम से बाहर गया था। न मौजूद मिलने की माफ़ी दीजिए भाई साहब!"

"आपभीक्या बातें करते हैं।" राधेश्याम ने कहा—"संसार में काम तो सबके पीछे एक-न-एक लगा ही रहता है।"

"हाँ, तो आप ख़त के लिये ही आए हैं, या और भी कोई काम है?"

"और कोई काम नहीं। ख़त के लिये ही आया हूँ।"

"तो अब ख़त लिखने की कोई ज़रूरत नहीं है भैया राधेश्याम, कल ही मुझे एक मेरे अज़ीज़ा हैं, उनका खत मिला था कि आ रहे हैं, और वह आज आ भी गए। वह इन दिनों बनारस में डिप्टी कलक्टर हैं, और मज़ा यह कि उनका और

जज साहब का दोस्ताना भी है, और रिश्ता भी। मैंने सोचा, अब ख़त लिखने की क्या ज़रूरत। वहीं ख़ुद जाकर, हाथ पकड़कर आपका काम क्यों न करा दूँ।"

"बड़ा अच्छा है।" राधेश्याम ने प्रसन्न होकर कहा—"इससे अच्छा मौक़ा और फिर निकलेगा ही कब।"

"ख़ैर, वैसे तो मैं उनसे आज ही आपकी मुलाक़ात करा देता, मगर चूँकि वह इस व़क्त बाहर टहलने जा चुके हैं, रात में ९-१० बजे तक शायद वापस होंगे, तब तक बेवक़्त हो जायगा। अब आप कल सबेरे ७॥ बजे तशरीफ़ ले आएँ, तो उनसे मुलाक़ात भी हो जायगी, और काम बनने का सीधा रास्ता भी निकल आएगा।"

"बहुत ख़ूब ! बहुत ख़ूब ! मैं राज़ी हूँ। सबेरे ७॥ बजे हाज़िर हो जाऊँगा। अच्छा आदाब अर्ज़, अब जाता हूँ।"

"हाँ-हाँ, शौक़ से जाइए। मगर कल सबेरे ज़रूर आ जाइएगा।"

"हाँ-हाँ, आ जाऊँगा।" यह कहते हुए पं० राधेश्याम मन-मोदक खाते प्रसन्नता के साथ घर की ओर चल दिए।

दूसरे दिन सबेरे ठीक ७॥ बजे वादे के मुताबिक़ पंडितजी नवाब साहब के घर पहुँच गए। अभी नवाब साहब कुल्ली-पाख़ाना से निवृत्त होकर बाहर न निकले थे। पंडितजी को उनका इंतिज़ार करना पड़ा।

नवाब साहब आते ही बोले—"आप आ गए ?"

"हाँ, मुझे तो बैठे-बैठे आध घंटा गुज़र गया। यहाँ ठीक ७॥ बजे आ गया था।"

"मगर अफ़सोस है। वह मेरे अज़ीज़ आज सबेरे ६॥ बजे ही सूट-बूट पहनकर कहीं टहलने चले गए।"

"आपने तो ७॥ बजे का टाइम मुझे बताया था।" पंडितजी ने दुखी होकर कहा—"अब क्या करना चाहिए?"

"आप उदास क्यों होते हैं? बात यह थी कि कल रात में उनसे तुम्हारे मुतअल्लिक़ कुछ कह न सका। मेरा ख़याल था, वह मेरी तरह ८ बजे ही घर से बाहर निकलेंगे। ख़ैर, कोई हर्ज नहीं। आप कल सबेरे सूरज निकलते ही आ जायँ। मैं आज रात में उनसे ज़िक्र भी कर लूँगा।"

"ख़ैर, जैसी आपकी मरज़ी। मगर भूलना नहीं।"

"कैसी बातें करते हो भैया राधेश्याम! काम अपना है कि किसी ग़ैर का?"

"हाँ, यही तो मैं भी समझता हूँ।"

"ज़रूर याद रक्खूँगा।"

"तो अब मैं जाता हूँ। अभी नहाना-धोना, खाना-पीना है। फिर कचहरी जाना है।"

पंडितजी सलाम करके चले गए।

---

[१६]

अगले रोज़—

"पिताजी, उठिए, सवेरा होने को आ गया।" मदनमुरारी ने बाप को जगाते हुए कहा।

पं० राधेश्यामजी उठ बैठे। पूछा—"क्या बजा है ?"

"५॥ बज रहे हैं पिताजी।"

"तो ठीक है, आज डिप्टी साहब से मुलाक़ात ज़रूर हो जायगी।" यह कहकर वह उठे, और बहुत जल्द ज़रूरी कामों से छुट्टी पाकर क़रीब ६ बजे मकान से चल दिए, और सीधे नवाब लटकन की कोठी पहुँचे।

नौकर-चाकर जाग चुके थे। कोठी का द्वार खुला था। पंडितजी बड़े इतमीनान से बारहदरी में जाकर बैठ गए। उन्हें बैठे-बैठे जब ८ बजे, तब नवाब साहब अंदर से निकलकर बाहर आए। आते ही बोले—"कब से बैठे हैं आप ?"

"आज तो मैं क़रीब ६ बजे ही यहाँ आ गया था।"

"मगर मुझे बड़ा अफ़सोस है कि अब डिप्टी साहब से आपकी मुलाक़ात नहीं हो सकती।"

"क्यों ?" पंडितजी ने सकपकाकर कहा।

"वह तो बनारस चले गए।"

"चले गए! कब ?"

"कल रात, एक बजे की गाड़ी से।"

"अभी जानेवाले तो थे नहीं ?"

"हाँ, काम जरूरी आ पड़ा। एक तार आया था सरकारी।"

"तो अब क्या किया जाय नवाब साहब ?"

"यही तो सोच रहा हूँ मैं भी।"

"यह सब मेरा दुर्भाग्य है!" पंडितजी ने अनमने होकर कहा—"अब आप यह करें कि बस एक ख़त ही लिख दें, जो कुछ होना है, हो जायगा। आज सत्ताइस हो ही गई।"

"यही तो मैं भी सोच रहा हूँ कि ख़त लिखूँ, तो क्या लिखूँ ?"

"क्यों ? ख़त लिखने में भी कोई अड़चन है क्या ?"

"हाँ, कुछ थोड़ी-सी है।" नवाब साहब ने ज़रा मुँह बनाकर कहा।

"क्या ?"

"बात यह है, राधेश्याम !" नवाब साहब ने अपना सिर खुजाते हुए कहा—"आपको शायद पता न हो। मेरी उनकी दिलशिकनी बहुत दिनों से चली आती है। ऐसी हालत में अगर मैं ख़त लिखता हूँ, और उन्होंने उसकी कुछ परवा न की, तो ?"

"फिर क्या सोच रहे हैं आप? मेरा और कोई वसीला भी नहीं। न मैंने किसी और तरफ़ निगाह ही डाली है।"

"हाँ, याद आया। बस, यह ठीक रहेगा। मैं अपनी वालिदा से मशविरा करूँ इस बारे में।"

"क्या उनका कुछ जोर पड़ेगा इस मामले में?"

"हाँ, क्यों नहीं। उन्हीं का तो सीधा वास्ता है जज साहब से।"

"तो उन्हीं से मशविरा कीजिए।"

"मगर इस वक़्त तो यह भी मुमकिन नहीं। वह आज यहाँ नहीं हैं।"

"कहाँ चली गईं?"

"वह भी तो डिप्टी साहब के साथ चली गई रात को।"

"तब आएँगी कब?"

"आज शाम तक आ जायँगी मोटर से।"

"अगर न आईं, तब?"

"नहीं, जरूर आ जायँगी।"

"ख़ैर, देखिए, तक़दीर क्या रंग लाती है।"

"नहीं-नहीं, वह जरूर आ जायँगी। और, उनके आने पर ख़त भी लिख जायगा।"

"मगर ऐसी कोशिश कीजिए" पंडितजी ने बड़ी आजुर्दगी के साथ कहा—'कि मेरा काम बन जाय। बस आज-भर का ही वक़्त है।"

पंडितजी बड़ी बेदिली से उठे, और चले गए। उन्हें सारे दिन बड़ी बेचैनी रही। किसी काम में जी न लग रहा था। दिन काटना मुश्किल हो गया। शाम को कचहरी से उठकर सीधे नवाब साहब के यहाँ पहुँचे।

नवाब साहब अपनी बारहदरी में बैठे हुए थे। पंडितजी भी जाकर बैठ गए, और पूछा—"कहिए, क्या रहा?"

नवाब साहब ने मुँह बनाकर कहा—"भाई! वह भी मामला फ़ेल हो गया।"

"कैसे?" पंडितजी ने निहायत रंजीदगी से कहा।

"बात यह है कि मा की फूफी के दामाद के लड़के हैं जज साहब। उनसे हम लोगों का कोई सीधा रिश्ता तो है ही नहीं। हाँ, वह हम लोगों को मानते थे ज़रूर। अभी परसाल जब उनकी लड़की की शादी हुई थी, हम लोग शरीक न हो सके, तभी से वह नाराज़ हैं। मा ने कहा, ऐसे घमंडी आदमी को सिफ़ारिशी ख़त लिखना बेकार है।"

पंडितजी अपना माथा पकड़कर बैठ रहे। उनकी सारी आशाएँ ख़त्म हो गईं। कुछ देर ख़ामोश बैठे रहे, फिर उठे, और सीधे अपने घर चले आए।

नवाब लटकन के शोफ़र ने नौकरी छोड़ दी थी, और उसकी जगह पर नौकरी कर ली थी नूरू ने। नूरू को नौकर रखने में नजमा ने भी काफ़ी कोशिश की थी। अब इस प्रकार नवाब साहब के यहाँ नूरू, नज़ीरा, नजमा, नई बेगम साहबा, इन चारों की टोली जमा हो गई थी, अब्दुलफ़हीम के ख़िलाफ़ साजिश करने के लिये। १०-५ बार दो-चार और-और आदमियों ने फ़हीम के मुतअल्लिक़ नवाब साहब से शिकायतें कीं, जिनका फल यह निकला कि नवाब साहब जी-जान से अपने लड़के फ़हीम के ख़िलाफ़ हो गए।

एक दिन नवाब साहब ने कहा—"फ़हीम! मैं तुम्हारी शिकायतें सुन-सुनकर थक चुका हूँ। आख़िर कब छोड़ोगे अपनी ये नाशायस्ता हरकतें?"

फ़हीम ने चौंककर कहा—"मैं मतलब ही नहीं समझा आपके फ़रमाने का। कैसी मेरी नाशायस्ता हरकतें?"

"यह लो! अब उलटा मुझसे सवाल हो रहा है! शर्म तो आती नहीं नालायक़ को।" नवाब साहब ने ज़रा गर्म होकर कहा।

फ़हीम अपने पिता की कठोर बातें सुनकर तिलमिला

उठा। उसमें सचमुच कोई बुराई थी नहीं। यह तो केवल उसके दुश्मनों की साजिश थी। वह बोला—"बिला वजह ही मतऊन करना जायज़ नहीं है किसी को। आपका फ़र्ज़ था पेश्तर तसदीक़ कर लेने का। अगर वाक़ई मेरी ग़लती होती, तो मैं उसका सज़ावार बनता। यों ही बक-झक..."

"बस, ज़्यादा ज़ुबान न चलाओ।" नवाब साहब उठकर बैठ गए, और कड़ककर बोले—"मैं ख़ूब तसदीक़ कर चुका हूँ तुम्हारी करतूतों की।"

"आपने मुझे मिट्टी ही समझ रक्खा क्या ?" फ़हीम को भी ग़ुस्सा आ गया, और तड़पकर बोला—"दिल और जिगर है मेरे भी। कुछ आप ही दिलवाले नहीं हैं।"

"अबे नालायक़! बड़ा दिलवाला बनता है! कमबख्त को देखो तो, मुझसे मुँहज़ोरी करने पर तैयार है!"

"मैं बेजा कुछ नहीं कहता। आपको कोई हक़ नहीं मुझ पर बेजा दबाव डालने और इस तरह गर्मी दिखाने का।"

"मुझे हक़ नहीं ? और तुझे हक़ है ?" नवाब साहब ने ज़रा मुँह बनाकर कहा।

"मैं फिर कहता हूँ, वाक़ई आपको हक़ नहीं। अब और ज़्यादा मजबूर न कीजिए मुझे ज़बान खोलने पर।"

"अच्छा, अब आप मेरे आक़ा बन रहे हैं! मुझ पर हुकूमत जताई जा रही है! वाह, ख़ूब रही!" नवाब साहब मारे

ग़ुस्से के दाँत किटकिटाने और होंठ चबाने लगे। फिर बोले—"अब तुझे भी इस घर में रहने का कोई हक़ नहीं। निकल, अभी निकल हमारे घर से।"

फ़हीम को भी ग़ुस्सा आ गया। फ़ौरन् नवाब साहब के सामने से उठ खड़ा हुआ, और सीधा मकान में जा दाख़िल हुआ।

फ़हीम की मा आजकल अपने मायके में थीं, इसलिये उसने घर में पहुँचकर फ़ौरन् अपनी ज़रूरी साथ ले जाने-वाली चीज़ें बाँधीं, और रात की गाड़ी से अपने मामू के यहाँ रवाना हो गया।

"एक मुसीबत हो, तो झेलूँ ; यहाँ तो आएदिन रोज़ ही नई आफ़त घेरे रहती है।"

"बजा फ़रमाते हैं आप। ज़िंदगी के झमेले तो भुगतना ही पड़ते हैं, मगर जो मामले ज़रूरी होते हैं, उन पर निगाह पहले जाती है।"

"यह ठीक है, मगर यह भी तो सोचो कि आखिर मैं क्या करूँ ? लगान इस साल चला नहीं। दावतों की और चंदे-वाली रक़म की वसूलयाबी रही एक तरफ़, नई बीवी साहबा ने अभी-अभी कल ५००) पर पानी फेरा। अब मियाँ सग़ीर ! तुम्हीं ग़ौर करो ज़रा। कहाँ से चंदे की रक़म लाऊँ, जो 'सर' बन सकूँ।"

"क्यों, बेगम साहबा ने क्या किया ?"

"अजी, कुछ न पूछो। जाने कहाँ की सनक सूझी। एक मशीन के लिये ऑर्डर भेज दिया, और वह ख़रीदी गई पूरे ५००) में, जानते हो क्यों ? बाल घुँघराले बनाने के लिये।"

"मगर ख़ैर। वह भी उनका शौक़ था, पूरा हो गया। अगर आपने सहूलियत से मँगा दी, तो और भी अच्छा रहा, वरना वह ज़िद करके मँगवा लेतीं।"

"अरे, ज़िद की न कहो। नजमा की भी तो मा है। ज़िद करके देखें न। वह तो यों कहो कि मैंने सिविल मैरिज करके एक गुनाह अपने सिर लाद रक्खा है। बस, इसी से डरता हूँ।"

"ख़ैर, इन बातों को छोड़िए, जो होना था, हो गया। मगर मेरा कहना यह है कि मौक़ा बार-बार नहीं आता। इस वक़्त अगर आप लड़ाई के चंदे में १०००) दे दें, तो मानो मुफ़्त में ही 'सर' का ख़िताब मिल गया आपको।"

"आख़िर क्या करूँ? कहाँ से लाऊँ रक़म?"

"किसी भले आदमी से क़र्ज़ ले लीजिए।"

"अच्छा ख़ैर, सोचूँगा।"

दोनो बैठे-बैठे यों ही बातें कर रहे थे कि अदालत के एक चपरासी ने आकर सलाम किया, और अपने झोले से एक समन निकालकर पेश किया। नवाब साहब ने समन पढ़कर सग़ीरहुसैन से कहा—"यह लो, यह दूसरी आफ़त और आई सिर पर!"

"क्या है?"

"नालायक़ फ़हीम ने जायदादी हक़ का दावा दायर कर दिया।"

"कैसा?"

"अरे भाई! वह अपना हक़ दिखाकर ज़मींदारी का बटवारा चाहता है।"

नवाब साहब ने समन की पुश्त पर दस्तख़त करके तामील पूरी कर दी। आधा टुकड़ा ले लिया, और आधा चपरासी को देकर उसे बिदा कर दिया। चपरासी चला गया। सग़ीर मियाँ ने पूछा—"फ़हीम ने ऐसा क्यों किया? कहाँ है आज-कल वह?"

"भाई, वह बड़ा नालायक़ था। मैंने उसे घर से निकाल दिया, अब उसने यह रंग दिखाया।"

"ख़ैर, उससे भी निबटा ही जायगा।"

"हाँ, निबटना तो है ही।"

नवाब साहब कुछ देर ख़ामोश बैठे सोचते रहे। उसके बाद बोले—"एक मशविरा दो सग़ीर! हाकिम-अदालत को एक माक़ूल डाली पेश की जाय, तो कैसा रहे?"

"वाह! वाह! क्या बात सोची है!" सग़ीरहुसैन ने तड़पकर कहा—"बहुत मुमकिन है, हम कामयाब हो जायँ।"

"तो बस, ठीक है। यही रही।"

इसके बाद मोटर तैयार हो गई, और नवाब साहब सग़ीरहुसैन के साथ उस पर बैठकर बाहर चले गए।

नवाब लटकन ने सरकारी वार-फ़ंड में १०००) का चंदा भी दे दिया। साहबों को दावतें भी कीं। उधर अब्दुलफ़हीम का जायदादी बटवारा भी हो गया। इधर ख़ानगी ख़र्चे भी दिनोंदिन बढ़ते ही जाते थे। यही कारण था कि उनकी माली हालत अब बहुत ही गिर चुकी थी। नजमा की शादी करने की भी फ़िक्र में थे। मगर यह भी सोच रहे थे कि शहर में मेरा बड़ा नाम है, लिहाज़ा बग़ैर काफ़ी ख़र्च उठाए शादी करना बहुत मुश्किल हो जायगा।

एक दिन उनके यारों की मंडली जमा हुई। करीमू बोला— हुज़ूर! मैं कुछ अर्ज़ करूँ?"

"कहो, क्या कहना चाहते हो?"

"मैं यह सोच रहा हूँ कि हुज़ूर की आमदनी अब बहुत गिर गई है, उसकी कोई तजवीज़ होनी चाहिए।"

"बात तो बिलकुल ठीक है। मगर करूँ भी, तो क्या?"

"मैं चाहता हूँ, आप चार-छ ताँगे बनवाकर किराए पर चलवाएँ, आमदनी ख़ासी रहेगी।"

"बहुत ठीक! बहुत ठीक!" हफ़ीज़ू ने तड़पकर कहा— "ख़ासी आमदनी होगी। मगर घोड़े बढ़िया हों।"

"उँह, तुमने भी क्या बात कही।" नजमू ने कहा—

"हमारे नवाब साहब एक-से-एक बढ़िया घोड़े रख सकते हैं, अगर ताँगे बनवाएँ, तो।"

"मगर यह तो सोचो," नवाब साहब ने हुक्क़े में कश लगाते हुए कहा—"नौकर ही सारी आमदनी चट कर जायँगे, तो ?"

"ऐसा क्यों करेंगे आप !" करीमू ने कहा—"हम लोग तो आपके ख़ादिम वैसे भी हैं। हमीं जोतेंगे।"

"एक ताँगे पर कितनी आमदनी होगी रोज़ाना ?" नवाब साहब ने हुक्क़े का धुआँ छोड़ते हुए कहा।

"मैं बताता हूँ, सुनिए।" नजमू ने जवाब दिया—"शहर का कोई भी ऐसा ताँगेवाला नहीं, जो कम-से कम १५) की मज़दूरी न करता हो। फिर, मरे हुए घोड़ों से। आपके घोड़े घोड़े होंगे। मेरे ख़याल से आमदनी होगी १८) की रोज़ाना। अब ख़र्चा निकाल दीजिए।"

"अजी, क्यों लनतरानी हाँकते हो !" नवाब साहब ने कहा।

"नहीं-नहीं, झूठ नहीं कहता है नजमू।" हफ़ीज़ू ने कहा—"सवारियाँ भी बैठती हैं ज़्यादातर अच्छे जानवर को ही देखकर।"

"फिर भी १८) रोज़ाना बहुत होते हैं हफ़ीज़ू।"

"यह आप क्या कहते हैं। पैदा करके न दिखा दूँ, तो मेरा नाम नहीं।"

"अच्छा-अच्छा, ठहरो।" नवाब साहब ने कहा—"मैं

ताँगे-घोड़े का तो इंतज़ाम कर दूँ, और रोज़ाना १५) सिर्फ़ हमें देते रहो तुम लोग। क्यों, इस बात पर राज़ी हो?"

सब लोगों ने एक स्वर से कहा—"हाँ, हम राज़ी हैं। १५) रोज़ाना हमसे लें आप।"

मंडली की बैठक बरख़ास्त हो गई।

नवाब साहब ने चार ताँगे बनने के लिये ऑर्डर दे दिया, और बढ़िया आस्ट्रेलियन घोड़े ख़रीदने की फ़िक्र में पड़ गए।

सुना गया कि बर्दवान में घोड़ों का अच्छा बाज़ार लगता है, अतः वह करीमू को साथ लेकर ट्रेन पर सवार हो गए, और बर्दवान पहुँचे।

बर्दवान के बाज़ार में उन्होंने देखा, सचमुच एक-से-एक बढ़िया आस्ट्रेलियन घोड़े वहाँ फ़रोख्त होने के लिये आए हैं। नवाब साहब ने पसंद करके चार घोड़े ४०००) में ख़रीदे, जो देखने में निहायत ही तंदुरुस्त, पैर-पीठ के सुडौल और ऊँची कनौती के थे।

घोड़ों की ख़रीदारी करने के बाद नवाब साहब मकान आए, तो उन्हें सुनाई पड़ा कि परसों नजमा नूरू के साथ मोटर पर सैर करने गई, और अब तक वापस नहीं आई! यह ख़बर सुनते ही सन्नाटे में आ गए।

सोचने लगे—"बड़ी बदनामी की बात है। शहर में मेरी इज़्ज़त थोड़ी नहीं है, हर छोटा-बड़ा मुझे जानता है। मैं अब किसी को क्या मुँह दिखाऊँगा। नजमा को भी क्या सूझी कि

एक नीच क़ौम, ग़रीब, अनपढ़ के साथ भगी। यह भी हो सकता है कि नूरू ही अपनी बदमाशी से ज़बरदस्ती उसे ले भागा हो। वह तो बेचारी औरत जात ठहरी, कर भी क्या सकती थी।"

इन्हीं ख़यालों में डूबे हुए वह अंदर हवेली में पहुँचकर अपनी चीज़ें सँभालने लगे। क्या देखते हैं कि सेफ़ टूट चुका है! सिर पकड़कर बैठ रहे। उस वक़्त ऐसा मालूम होता था कि किसी होशियार कारीगर ने नवाब साहब की शक्ल में पत्थर की मूर्ति तराशकर रख दी हो।

ठीक इसी वक़्त बेगम साहबा ने उनके कमरे में पैर रक्खा। आहट पाते ही नवाब साहब चौंक पड़े। बोले—"देखी नजमा की करतूत! मेरी सेफ़ की रक़म भी उड़ा ले गई वह।"

"सेफ़ में कुछ था?"

"अरे, उसमें १०००) नक़द था!" नवाब साहब लंबी साँस खींचकर बोले—"मैंने उसकी शादी के लिये जो ज़ेवर बनवाकर रक्खे थे, वे सब भी उसी में तो थे!"

"तब तो बड़ा ग़ज़ब हुआ नवाब साहब!" बेगम ने आँखें चमकाकर कहा—"मगर आपने भी तो ग़ज़ब किया कि पूरे १६ साल की हो गई, मगर उसकी शादी कर देने की परवा आज तक न की।"

नवाब साहब ख़ामोश हो गए।

नूरू तेज़ रफ़्तार से कानपुर-रोड पर मोटर उड़ा ले गया। जब दोनो कानपुर पहुँच गए, तो नजमा ने कार बेच डालने की सलाह दी। चार-छ रोज़ में उसका ख़रीदार मिल गया, और कार बेच डाली गई। पास में पैसा तो काफ़ी था ही, बड़े मज़े में दोनो की गुज़र होने लगी।

नजमा और नूरू बहुत पोशीदा तौर पर रहने लगे। उन्हें कानपुर में क़रीब-क़रीब तीन महीने गुज़र गए। नूरू ने अब तक कहीं नौकरी भी न की। दोनो ने यह समझ लिया कि शायद नवाब साहब ने अपनी बदनामी ज़्यादा फैलने के डर से थाने में रिपोर्ट नहीं कराई है, क्योंकि पुलिस भी उनसे कुछ न बोलती थी।

नजमा और नूरू, दोनो ही के गले बहुत सुरीले थे। दोनो को गाने का शौक़ था। नजमा तो अपने गाने से मुर्दों में भी जान डाल देती थी। रूप भी मनोहर था उसका।

उन दिनों कानपुर में एक थिएटर-कंपनी आई हुई थी। नजमा और नूरू, दोनो ही जब-तब उसके खेल देखने जाया करते थे। कंपनी के मैनेजर से भी धीरे-धीरे उनकी जान-पहचान हो गई।

एक दिन नजमा ने कंपनी में ऐक्ट्रेस बनने का प्रस्ताव

मैनेजर के सामने पेश किया। मैनेजर ने नजमा को रूप-रंग के कारण पसंद कर लिया। साथ ही जब उसने गाना भी सुना, तो बहुत ही ख़ुश हुआ।

नजमा और नूरू, दोनो ही थिएटर में दाख़िल हो गए। अब उन्हें आमोद-प्रमोद के साथ-साथ आमदनी का भी ख़ासा सहारा हो गया, और उनके दिन बड़े चैन से कटने लगे।

नजमा ने मकान से भागते वक़्त सौतेली मा के मशविरे से अपना फ़रज़ी नाम 'लीला' रख लिया था, इसलिये उसने एक ख़त उनको भी लिख दिया, और लखनऊ के हाल पूछे।

नजमा का ख़त लखनऊ आया। नज़ीरा ने ख़त ले जाकर नई बेगम को दिया। हालाँकि वह लिफ़ाफ़ा पेश्तर नवाब साहब के हाथ में ही पहुँचा था, मगर उस पर भेजने-वाले का नाम 'लीला' लिखा हुआ देखकर उन्हें किसी शक-शुबहा की गुंजायश ही न रही थी।

दोनो तरफ़ से ख़त बराबर आते-जाते रहे। दोनो को इधर-उधर के हाल ख़ूब मिलते रहे।

नजमा और नूरू, दोनो ही कुछ दिनों बाद बंबई चले गए। नजमा ने अपने जाने की इत्तिला भी बेगम साहबा को दे दी।

नवाब लटकन के चारों घोड़े भी तब तक बर्दवान से आ गए थे। घोड़े क्या थे, पूरा तमाशा थे। सैकड़ों आदमी उन्हें देखने आते थे। चारों तरफ़ नवाब साहब के घोड़ों का ही तज़किरा था। नवाब साहब तारीफ़ें सुन-सुनकर फूले न समाते थे।

इधर चारों ताँगे भी बनकर तैयार हो गए। वह भी बनावट और सफ़ाई में ख़ासे थे। कारीगरों ने उन्हें बेहतर-से-बेहतर बनाने में कोई कसर न छोड़ी थी।

शाम के वक़्त नवाब साहब अपने दोस्तों के साथ ताँगे पर बैठे, और एक घोड़ा जोता गया। कोचवानी में रक्खा गया करीमू। अब ताँगा चला। अभी ज़्यादा-से-ज़्यादा ५० क़दम ही बढ़ा होगा कि घोड़ा खड़ा हो गया। करीमू ने ४-६ चाबुक ख़ूब कसकर जमाए। ख़ैर, घोड़ा कुछ आगे बढ़ा। मगर वही बात—फिर ४०-५० क़दम चलने के बाद घोड़ा ठप हो गया। मारने-पीटने पर फिर चला। ऐसा जान पड़ने लगा कि घोड़े को एक ज़िद-सी पड़ गई है कि देखना है, मुझे कितना पीटा जाता है, मैं तो कुछ दूर चलकर खड़ा ही हो जाऊँगा। करीमू भी घोड़े की इस हरकत से झल्ला

उठा, और उसने मार-मारते घोड़े की नाकों दम कर दिया, मगर घोड़े ने अपनी हरकत न छोड़ी।

नवाब साहब को घोड़े की बदौलत जो शरमिंदगी उठानी पड़ी, उसका कहना ही क्या! लोग खूब आवाज़ा कसने लगे। कोई कहता—"वाक़ई हज़ार रुपए का है।" तो कोई कहता—"सचमुच उसने क़ीमत अदा कर दी।" कोई कहता—"अगर उसमें ऐसा जौहर न होता, तो क्या हज़ार रुपए मुफ़्त के थे, जो लुटाए जाते!" ग़रज़ कि नवाब साहब सख्त परेशान थे।

उन्होंने करीमू से कहा—"इस साले को ले जाओ, और दूसरे को लाकर जोतो।"

करीमू ने दूसरा घोड़ा लाकर जोता, मगर वह भी पहले का सगा भाई ही निकला। करीमू पीटते-पीटते सख्त परेशान हो गया। आखिरकार तीसरा और फिर चौथा घोड़ा जोता गया, मगर नहीं मालूम कि बर्दवान से चलते वक़्त घोड़ों ने बाहम कुछ मशविरा कर लिया था कि जो एक रविश पकड़े, दूसरे को भी वही अख्तियार करनी चाहिए।

नवाब साहब दोस्तों के साथ वापस मकान चले आए। जी में सोचने लगे, यह तो ४०००) मिट्टी में मिल गए। नहीं मालूम, क़ुदरत को क्या मंज़ूर है कि घाटे पर घाटा होता जा रहा है। चदे में १०००) गया, नजमा ने दो-ढाई हज़ार पर पानी फेर दिया। इधर यह हाल हुआ। लगान

और दावतों की रक़म की वसूलयाबी बाक़ी पड़ी रही। अब क्या होगा? कैसे गुज़र होगी? नवाब साहब इसी उलझन में आकर एक कुरसी पर बैठ गए।

"क्या सोच रहे हैं आप!" सग़ीरहुसैन ने पूछा।

"यही कि मेरा हर काम उलटा होता जा रहा है।"

"यह तो वक्त. है, कभी कैसा, कभी कैसा।"

"अरे भाई, सोचा था कि कुछ न होगा, तो ताँगे ही किराए पर चलाऊँगा, इसी से कुछ आमदनी होने लगेगी। वह मनसूबा भी सब ख़ाक में मिल गया।" नवाब साहब ने लंबी साँस लेकर कहा—"देखने में तो कितने तगड़े और ख़ूबसूरत हैं घोड़े, मगर देखीं करतूतें उनकी आपने?"

"नवाब साहब! घोड़ों में कोई ख़राबी नहीं। है, तो सिर्फ़ उनकी यह बुरी आदत ही है। मेरे ख़याल से ये घोड़े फ़ौजी डेयरी फ़ारम के हैं। इनका तो बस यही काम है कि १०-२० क़दम चलें, और रुक जायँ।"

"वहाँ ये किस काम में लाए जाते हैं?"

"सिर्फ़ दूध बेचने की गाड़ी में जोते जाते हैं।" सग़ीर-हुसैन ने एक तजुर्बेकार की सूरत में कहा—"दूध की गाड़ी चली, एक बैरक के सामने ठहरी। वहाँ दूध दिया, और चल दी। फिर कुछ दूर चलकर दूसरे बैरक के सामने खड़ी हो गई। वहाँ दूध दिया गया। इस तरह इन घोड़ों की ऐसी आदत बन गई। अब किसी तरह इनकी आदत बदले, तो काम चले।"

"मुझे क्या ख़बर कि ये साले इतने निकम्मे निकलेंगे।" नवाब साहब ने हाथ मलते हुए कहा—"मैंने तो इन्हें तगड़ा और तंदुरुस्त समझकर ख़रीदा था, यह सुनकर कि फ़ौजी घोड़े हैं।"

"ख़ैर, जो हुआ, सो हुआ। अब इन्हें बेच डालें आप।"

"यहाँ इन्हें मोल लेगा ही कौन? सारे शहर में तो इनकी हरकतें खुल ही गईं।"

"यहाँ न सही, बाहर भेजकर बिकवा डालिए।"

"कहाँ भेजूँ?"

"मैंने सुना है, ज़िला फ़र्रुख़ाबाद में एक मेला शाह मदार का लगता है। वहाँ घोड़ों का बड़ा बाज़ार भी लगता है। मेरे ख़याल से इन्हें वहीं भेजें आप।"

"अच्छा ख़ैर, देखा जायगा। मगर घाटा उठाना पड़ेगा।"

"अब आप घाटे को न सोचें, नहीं तो इनको रातिब देते-देते और भी परेशानी उठानी पड़ेगी। जो दाम खड़े हों, खड़े कर लिए जायँ।"

"अच्छा, यही करूँगा भाई।" नवाब साहब ने आज़ुर्दगी के साथ कहा।

---

[२२]

अगले रोज बड़ी बेगम ने मायके से वापस आते ही पूछा—"नजमा नहीं मालूम होती घर में, कहीं बाहर गई है क्या ?"

"क्या बताऊँ तुम्हें नजमा के मुतअल्लिक़।" नवाब साहब ने शरमिंदगी के साथ कहा—"उसने तो हम लोगों की नाक कटवा दी।"

"आखिर क्या किया उसने ?" बेगम ने तमककर कहा—"कुछ मुँह से भी तो कहो।"

"भाग गई।"

"भाग गई ?"

"हाँ।"

"किसके साथ ?"

"नूरू के।"

"नूरू कौन ?"

"ड्राइवर।"

"किसका ?"

"अपना ही।"

"कहाँ मकान था उसका ?"

"यहीं का रहनेवाला था वह।"

"तब भागकर कहाँ चली गई ?"

"पता नहीं, कहाँ गई !"

"नूरू अपने घर पर है ?"

"वह भी ग़ायब है।"

"अच्छा, पूरी बात साफ़-साफ़ बताइए, हुआ क्या ?"

"बात यह थी कि नूरू अपने यहाँ ड्राइवर था। उम्र का जवान और शकील था। मैं बर्दवान गया हुआ था, घोड़े ख़रीदने। नजमा नूरू के साथ कार पर बैठकर, मेरी सेफ़ का सारा रुपया और ज़ेवर लेकर चंपत हो गई।"

"तो गोया कार भी नहीं है अब घर में !"

"नहीं।"

"तुमने पुलिस में रिपोर्ट दी ?"

"नहीं।"

"आख़िर क्यों ?"

"बदनामी के ख़ौफ़ से।"

"अच्छा, तो घाटा कितना हुआ नजमा की बदौलत ?"

"यही कोई ५०००) का। मगर यही घाटा क्या, और भी तो लंबेघाटे रहे हैं इस साल।"

"कैसे ?"

"चार-पाँच हज़ार तो दावतों में ख़र्च हुए, चंदों में भी

कम-से-कम दो-ढाई हज़ार ख़र्च हुए। चार-पाँच हज़ार ताँगे और घोड़े ले डूबे। नजमा ने इधर पाँच हज़ार पर पानी फेर दिया, और उधर तुम्हारे नालायक़ फ़हीम ने बटवारे का दावा दायर कर दिया। सारा साल घाटे में ही गुज़रा। लगान की आमद बंद होने से मालगुज़ारी भी घर से ही देनी पड़ी।"

"जानते हो, यह सब क्यों हुआ?" बेगम ने ज़रा मुँह बिगाड़कर कहा—"सिर्फ़ तुम्हारे आमाल तुम्हें पेरने लगे।"

"मेरे आमाल?"

"हाँ, जनाब, आपके आमाल।"

"मैं क्या बुरा करता हूँ?"

"नजमा तुम्हारी लापरवाही से ही भाग गई।"

"मैंने लापरवाही की? यह तो ग़लत कहती हो तुम।"

"हरगिज़ नहीं। अगर तुम परवा करते, तो कभी न भागती। क्या वह शादी करने लायक़ हो नहीं गई थी? पूरे १६ साल की थी।"

"नहीं-नहीं, ऐसा न कहो। मैंने इस साल उसकी शादी करने के ही इरादे से कुछ ज़ेवर भी बनवाए थे। कमबख़्त उन्हें भी ले गई।"

"मैं और बात कहती हूँ। किसकी लड़कियाँ हैं, जो १६ साल तक घर में बैठी रहती हैं? १५-१६ साल की हुई कि शादी कर दी गई।"

"तो मैंने कब चाहा कि उसकी शादी न हो ?"

"मैं तो यही कहूँगी कि तुमने उसकी शादी करने की फ़िक्र की ही नहीं। हमेशा अपने ही रंग में रँगे रहे। फ़िक्र रही, तो साहब लोगों की दावतों की, ख़िताब पाने की, नफ़्सपरस्ती की। एक बात हो, तो कहूँ। तुमने अपने आमालों से सब कुछ चौपट कर दिया।"

"ख़ैर, बहस करके फ़ायदा क्या निकलेगा ? ज़्यादा बात न बढ़ाओ, ख़ामोश हो जाओ।"

"अजी, ख़ामोश कैसे हो जाऊँ।" बेगम ने आँखें बिगाड़ते हुए कहा—"मेरे दिल में आग जलती है। आख़िर अब घर-गिरस्ती कैसे चलेगी ? यह भी कुछ सोचा है आपने ?"

"भाड़ में जाय घर-गिरस्ती !" नवाब साहब ने ग़ुस्से से कहा, और बात बढ़ने के डर से उठे, और बाहर चले आए।

लखनऊ की तहसील मलीहाबाद की देहात में एक साहब रहते थे मुहम्मद साबिरअली। अच्छे रईस थे, परमात्मा ने उन्हें धन-दौलत भी भरपूर दे रक्खी थी। किसी बात की कमी न थी; अगर थी, तो केवल औलाद की। वह लावारिस थे। उनके मरने के बाद उनकी जायदाद का भोगनेवाला कोई न था। यही चिंता उन्हें हरदम सताए रहती थी।

उन्होंने बहुत कुछ सोच-विचार के बाद अपने भानजे अब्बासअली को गोद लेकर अपना उत्तराधिकारी बना लिया। धीरे-धीरे वक़्त गुज़रने लगा। समय की गति भी बड़ी प्रबल है। मुहम्मद साबिरअली की बीवी हामला हुई, और ठीक नौ महीने बाद एक सुंदर बालक का जन्म हुआ।

माता-पिता ने उस बालक का नाम मुहम्मद आशिक़अली रक्खा। जब तक आशिक़अली बारह साल का हुआ, तब तक उसके माता-पिता दोनो ही संसार से चल बसे।

अब्बासअली चूँकि गोद लिया गया था, और वह अपने को उत्तराधिकारी भी समझता था, इस कारण उसने सारी जायदाद पर अपना क़ब्ज़ा करना चाहा। इधर मुहम्मद आशिक़अली चूँकि उनका औरस पुत्र था, फिर भला वह जायदाद पर अपना जायज़ हक़ क्यों न समझता। बालिग़

होने पर उसके मामू नाज़िमअली ने उसकी मदद की, और अब दोनो फ़रीक़ों अर्थात् मुहम्मद आशिक़अली और अब्बासअली में झगड़ा पैदा हो गया।

अब्बासअली अपनी मदद के लिये नवाब लटकन साहब के पास लखनऊ आया। उसने सारा माजरा सुनाया, और प्रार्थना की कि आप मेरी इस समय मदद करें। नवाब साहब कुछ देर सोचने के बाद बोले—"तुम्हारे इस मामले में काफ़ी कोशिश करनी होगी भाई अब्बासअली! और रुपया भी काफ़ी ख़र्च होगा। बोलो, कितना रुपया लगा सकोगे?"

"रुपए के नाम से मेरे पास फूटी कौड़ी नहीं है नवाब साहब।"

"तो इसके मानी यह हैं कि रुपया सारा-का-सारा ख़र्च करूँ मैं?"

"अगर मेरे पास रुपया ही होता, तो मैं मारा-मारा क्यों फिरता।"

"अच्छा, समझ लिया। मगर यह भी तो सोचो कि अगर रुपया मैंने लगा दिया, और अल्लाह के फ़ज़ल से कामयाबी भी हासिल हो गई, तो मुझे उसका एवज़ क्या मिलेगा?"

"अरे, इसके लिये आप क्या कहते हैं। यह तो खुली हुई बात है। मैं और आप रियासत के बाहम मसावी हिस्सेदार होंगे।"

"अगर तुम इस बात पर दिल से राज़ी हो, तो मैं तैयार हूँ।" नवाब साहब ने बड़ी दिलजमई और ख़ुशदिली के साथ कहा—"मगर तुमको इस बात का इक़रारनामा लिखना पड़ेगा।"

"मैं बसरो चश्म तैयार हूँ इक़रारनामा लिखने को।" अब्बासअली ने मुसकराकर कहा—"आप जब चाहें, तब लिखा लें।"

"अच्छी बात है, तो मैं हर तरह तुम्हारी मदद कर सकूँगा। रही इक़रारनामे की बात, सो आज तो इतवार है। कल कचहरी खुलेगी। बस, कल लिखा-पढ़ी हो जायगी।"

"मैं तैयार हूँ। कल ठीक वक़्त पर आ जाऊँगा। अब जाता हूँ।"

"अच्छी बात है।"

अब्बासअली सलाम करके उठा, और चला गया।

नवाब साहब आधी रियासत पाने की ख़ुशी में उठे, और ज़नानख़ाने में दाख़िल हुए। बेगम साहबा ने देखते ही कहा—"मेरे कान एक मुद्दत से सूने हैं, आपसे बारहा कहा, मगर आपने परवा आज तक न की। इससे तो यही अच्छा है कि मेरे पुराने रिंग जो टूटे पड़े हैं, उन्हें ही सँभलवा दें आप। मुझे तो औरतों में बैठते-उठते शर्म आती है।"

"अरे, तुम भी क्या इयरिंग की बात कहती हो।" नवाब साहब ने मुसकराते हुए कहा—"खुदा ने चाहा, तो अब वह दिन सामने आ रहा है कि तुम नीचे से ऊपर तक सोने से पीली हो जाओगी।"

"अरे, बहुत डींग न मारो। बुड्ढे होने आए, मगर लन-तरानियाँ न गईं।"

"ये लनतरानियाँ हैं ?' नवाब साहब ने शानदार लहजे में कहा—"बस, समझ लो, बहुत जल्द दिन पलटने-वाले हैं।"

"सच ?"

"बिलकुल सच।"

"कैसे यक़ीन करूँ मैं। उधर आठ-दस हज़ार का घाटा हो ही चुका था, इधर फ़हीम ने जायदाद का बटवारा करा लिया। तुम्हारे पास अब रहा ही क्या ?"

"सब कुछ सबने छीन लिया," नवाब साहब ने हाथ नचाते हुए कहा—"तो क्या मेरी तक़दीर छीन ली किसी ने ?"

"तुम्हारी तक़दीर ने ही तो मियाँ, ये दिन दिखाए! अब आगे चलकर शायद जहन्नुम दिखाए।" बेगम ने ज़रा मुँह बिगाड़कर कहा।

"अरे, तुम नहीं समझीं।" नवाब साहब बोले—"मेरी तक़दीर अब जाग रही है! देखना, क्या से क्या हुआ जाता है।"

"कैसे ?"

"एक मुक़द्दमा मेरे पास आया है। मैं उसकी पैरवी करूँगा, और मालामाल बन जाऊँगा।"

"किस तरह ? साफ़ साफ़ कहिए।"

नवाब साहब ने सारा माजरा कह सुनाया, और बताया—"मैं सोलह आने कामयाब हूँगा। तब तुम एक इयरिंग कहती हो, चाहे जो कुछ बनवाना। फिर देखना, हम लोग एक नई दुनिया में ही पहुँच जायँगे। शान ही निराली होगी हम लोगों की। नई-नई कोठियाँ बनवाएँगे। बढ़िया कार रक्खेंगे। तरह-तरह का फ़र्निचर हमारी कोठियों में होगा। और हाँ, हो सका, तो एक कुशादा कोठी गोमती के किनारे भी बनाएँगे गर्मियों में रहने के लिये। भला सोचो न, हम लोगों की दुनिया उस वक़्त कैसी होगी।"

"ख़ैर, देखो, तुम्हारी तक़दीर ज़ोर दे, तब।"

"अरे, कैसी बातें करती हो। तक़दीर ज़ोर देगी, और ज़रूर ज़ोर देगी। अगर तक़दीर ज़ोर न मारती, तो यह मामला ही मेरे पास न आता। क्या शहर में और कोई रईस ही नहीं है। आख़िर अब्बासअली मेरे पास ही क्यों आया ?"

"हाँ, यह तो बताइए, मुक़द्दमा लड़ने के लिये इतना रुपया कहाँ से आएगा ?"

"उँह, रुपए की क्या फ़िक्र। घर में न सही, मेरे पास जायदाद तो है। बेच डालूँगा।"

"ऐसा न हो कि जायदाद भी जाय, और कामयाबी भी हाथ न आए?"

"भला, ऐसा कहीं हो सकता है। मैंने मामले को ख़ूब समझ लिया है।"

"ख़ैर, यह तुम जानो।"

बेगम साहबा उठकर अपने ख़ानगी कामों में लग गईं।

नई बेगम उर्फ़ लेडी साहबा भी घर की रंगत खूब गहरी नज़र से देख रही थीं। उन्होंने अपने जी में फ़ैसला किया कि नवाब साहब ने पूरे दो गाँव बेचकर मुक़दमेबाज़ी में लगा दिए हैं, अब उनके पास सिर्फ़ आधा गाँव ही बाक़ी रहा है। अगर मुक़दमे में हार गए, तब तो यह कौड़ी-कौड़ी को मुहताज हो जायँगे। इधर यह होगा कि ज़रूरत पड़ने पर मेरे ज़ेवरों पर आ बनेगी। नहीं दूँगी, तो झगड़ा होगा। नजमा की मा के पास वैसे भी कुछ बढ़िया ज़ेवर नहीं हैं। इससे तो यही अच्छा है कि मैं भी अपने लिये कोई और रास्ता निकालूँ। यही सब सोचकर उन्होंने आवाज़ दी—"नज़ीरअहमद ! क्या कर रहे हो ? ज़रा इधर आना।"

बावर्चीख़ाने से जवाब मिला—"अभी आया, ज़रा हाथ साफ़ कर लूँ।"

नज़ीर हाथ धोकर आ गया। बोला—"क्या हुक्म है सरकार ?"

"एक बात पूछूँ ?" नई बेगम साहबा ने ज़रा मुसकराहट के साथ कहा।

"पूछिए हुज़ूर !" नज़ीर ने भी मुसकराकर जवाब दिया।

"हमारे घर की हालत तो देखते ही हो ?'

"जी हाँ।"

"अब यहाँ तुम्हारे ख़याल से, कब तक मेरी गुज़र होगी ?"

"ज़रा मुश्किल मालूम होता है।"

"तब मुझे क्या करना चाहिए ?"

"आपने क्या सोचा है ?"

"मैं यही तो सोचती हूँ कि यहाँ अब मुझे कुछ ही दिनों में उम्दा और लज़ीज़ खाना मुयस्सर न होगा। न अच्छा कपड़ा ही नसीब होगा। बहुत मुमकिन है कि मेरे जेवरों पर भी आ बने।"

"आपने अपनी पूँजी भी तो कुछ बचा ही रक्खी होगी ?" नज़ीर ने पूछा।

"तुमसे क्या छिपा है नज़ीर! संदूक़ची तो तुम ख़ुद ही खोला करते हो।"

"मैं कोई आपकी तलाशी लेता हूँ ?"

"न सही, तो समझ लो, इस वक़्त मेरे पास ५,०००) के क़रीब होंगे।"

"और इनके अलावा जेवर।"

"हाँ।"

"तब मैं बताऊँ ? आप बुरा तो न मानेंगी ?"

"यह तुम क्या कहते हो। कभी तुम्हारी बात को बुरा माना मैंने ? कह दो।"

"तो नजमा का तरीक़ा अख्तियार करो, अगर मुनासिब समझो, तो।"

"ठीक, यही बात मैं भी सोच रही हूँ।"

"मगर एक बात आपको करनी होगी।"

"वह क्या ?"

"वह भी साथ ही चलेगी।"

"हाँ-हाँ, यह मैं पहले ही सोच चुकी हूँ। वह बेचारी मुझसे कई बार रो-रोकर कह चुकी है। वह नवाब साहब के साथ रहने को जी से राज़ी नहीं है। मगर करे, तो क्या करे। मजबूर है। तुम्हारी सुसराल में भी तो कोई नहीं रहा कि जो वह वहीं चली जाती। उसे ज़रूर साथ ले जाऊँगी मैं।"

"ख़ैर, ठीक है। तो चलोगी कैसे ?"

"यही मौक़ा तो निकालना है, और निकालना पड़ेगा तुम्हें।"

"मैं क्या निकालूँगा मौक़ा ?"

"बताऊँगी तुम्हें वक़्त आने पर। अब जाओ, अपना काम करो।"

"हाँ, ख़ूब याद आया। आज आपका एक ख़त बंबई से आया है। मेरी जेब ही में पड़ा रह गया। यह लीजिए।"

बेगम साहबा को एक लिफ़ाफ़ा देकर नज़ीर कमरे से बाहर निकल गया।

पिछले ज़माने में एक हुए हैं नवाब सादिक़अली बेग। उन्होंने अपने रहने के लिये एक कोठी बनवाई थी। कोठी क्या थी, पूरा तिलस्मख़ाना था। उसकी बारहदरी में जाइए, तो वहाँ एक बड़ी-सी परी की मूरत खड़ी मिलती थी, जो ऐसी कारीगरी से बनाई गई थी कि एक पेंच के सहारे एक गज़ ऊपर उठकर अपने नीचे के तहख़ाने में जाने का रास्ता खोल देती थी। आप बहुत इतमीनान से सीढ़ियों से नीचे उतरकर तहख़ाने में पहुँच सकते थे। बारहदरी के पास ही के कमरे में एक बड़ी-सी अलमारी दीवार में लगी थी। उसे खोलने से अच्छी-ख़ासी, तीन ख़ानोंवाली अलमारी दिखाई पड़ती थी। मगर उसके नीचेवाले ख़ाने में अगर कोई चीज़ न रक्खी जाय, तो वहाँ ऐसा खटका लगा हुआ था कि पल्ला एक तरफ़ को हटकर नीचे की तरफ़ जाने के लिये सीढ़ियाँ खोल देता था। इन सीढ़ियों पर से होकर कोठी के बिलकुल पीछे, एक चोर दरवाज़े पर पहुँचकर, कोठी से बाहर निकलने का रास्ता मिलता था। यह इसीलिये बनाया गया था कि अगर किसी मौक़े पर कोई ग़नीम हमला करके कोठी में आ जाय, तो बड़ी आसानी से रहनेवाले अपनी जान बचा सकते थे। इसी प्रकार और भी कई ऐसे ही

पेचीदा रास्ते कोठी में थे। कोई किसी कोठरी में निकलता था, कोई किसी छोटे-से मकान के घेरे में। कोई कहीं, कोई कहीं। ग़रज़ कि यह पुरानी कोठी अजीबो ग़रीब वज़ा-क़ता की थी। अलावा इसके, लोगों का ख़याल था कि इस कोठी में करोड़ों अशर्फ़ियाँ और जवा-हिरात दफ़न हैं।

नवाब लटकन साहब भी दो-चार बार इस कोठी की सैर कर चुके थे। चूँकि बुलंद ख़याल के आदमी थे, इस वजह से उनके जी में भी कभी-कभी आता था कि काश हमारे क़ब्ज़े में भी ऐसी ही कोठी होती।

इस वक़्त इस कोठी के जो मालिक थे, उनका ज़माना बिगड़ा हुआ था। रियासत के नाम से एक चप्पा ज़मीन भी न थी उनके पास। कौड़ी-कौड़ी को मुहताज थे। बड़ी मुश्किल से गुज़र होती थी। रहने को तो उनका दूसरा मकान था ही, इसलिये उन लोगों ने सोचा कि लाओ, इस तिलस्मख़ाना को बेच ही डालें। रक़म ख़ासी हाथ लग जायगी। इसी ख़याल से उन्होंने कोठी पर लॉटरी डालने का फ़ैसला किया, क्योंकि एकमुश्त क़ीमत देनेवाला कोई नज़र न आता था।

लॉटरी एक लाख रुपए की डालने का इरादा किया गया, और टिकट बनाए जाने लगे एक-एक हज़ार रुपए के।

शहर में लॉटरी पड़ने की ख़बर ख़ूब गर्म हो रही थी। इस ख़बर को सुनकर करीमू भागता हुआ नवाब लटकन के पास

आया, और बोला—"कुछ आपने भी सुना ! लॉटरी पड़ रही है तिलस्मख़ाने पर !"

"क्यों बेकार बहकी-बहकी बातें कर रहे हो करीमू ! झूठ कह दिया होगा किसी ने।"

"नहीं जनाब, झूठ कैसे ?" करीमू ने ज़ोर देते हुए कहा—"मैं अभी-अभी तो बाज़ार में देखता आया हूँ। लोग टिकट बेच रहे हैं।"

"सच ?"

"हुज़ूर, बिलकुल सच।"

"कितने को लॉटरी पड़ रही है ? यह भी कुछ सुना ?"

"हाँ साहब, मैं सारा पता ले आया हूँ। सौ टिकट पड़ेंगे, एक-एक हज़ार रुपए के।"

"तब क्या मैं भी एक टिकट ख़रीद लूँ ?" नवाब साहब ने कहा।

"हुज़ूर ! मेरी तो यही राय है।"

इसी वक़्त ग़फ़ूर, नियाज़ू, नजमू भी आ गए। उन तीनो ने भी इस क़िस्से को सुना। नवाब साहब ने उनसे भी मशविरा किया।

"मेरे ख़याल से अब जाग चुकी है आपकी तक़दीर। आपको एक टिकट ज़रूर ख़रीदना चाहिए।" नजमू ने जवाब दिया।

"कैसे मान लूँ कि मुक़द्दर जग चुका है ?" नवाब साहब ने कुछ मुसकराते हुए कहा।

"अरे, इसमें भी कोई शक रहा है अब !" नियाज़ू ने हाथ नचाते हुए जवाब दिया—"भला, सोचिए कि अगर यह न होता, तो जायदादी मुक़द्दमा भी आपके हाथ न आता।"

ग़फ़ूर बोल उठा—"हुज़ूर ! अब मुक़द्दमे का कैसा है रुख़ ?"

"मुक़द्दमा बड़े अच्छे ढंग से चल रहा है।" नवाब साहब ने शानदार लहजे में कहा—"और, अल्लाह ने चाहा, तो कामयाब हूँगा।"

"तब भला सोचिए, रियासत थोड़ी मिलेगी आपको।" ग़फ़ूर ने कहा—"पूरे-पूरे १५ मुसल्लम गाँव हाथ लगेंगे। ऐसी जायदाद आपके पास पहले थी क्या ?"

"तभी तो हम लोगों का यह फ़ैसला है कि इन दिनों मुक़द्दर जागा है आपका।" नज़मू ने कहा।

"तो तुम्हारी सबकी राय है कि हज़ार रुपया इस काम में भी लगा दूँ ?"

"हुज़ूर ! हम तो यही कहते हैं।" नजमू ने जवाब दिया—"और, लॉटरी भी आपके नाम ही निकलेगी, इसमें भी शक नहीं।"

"निकलेगी, और ज़रूर निकलेगी।" ग़फ़ूर ने कहा।

"अच्छी बात है नजमू! हज़ार रुपया इस काम में भी लगा दो।"

ग़फ़ूर बोला—"टिकट तो खरीद लें आप आज ही। इसके अलावा, अब आप घोड़ों का भी इंतिज़ाम कर दें।"

"कैसा?" नवाब साहब ने माथे पर ज़रा बल देते हुए पूछा।

"यही कि शाह मदार का मेला ३-४ दिन में लगनेवाला है। घोड़े मकनपुर भेजे जायँ।"

"तब तो इसके मानी यह हुए कि घोड़े आज से कल तक यहाँ से भेज दिए जायँ?"

"हाँ हुज़ूर।"

"अच्छा बोलो, घोड़े लेकर कौन जायगा?"

"हम सब जाने को तैयार हैं, आप जिसे हुक्म दें।"

"अच्छा ग़फ़ूर, तुम और करीमू चले जाओ।"

"तो क्या आप नहीं जायँगे?"

"मेरे जाने की ज़रूरत?"

"नहीं ऐसा ठीक नहीं। वहाँ क़ीमत का हिसाब-किताब कौन करेगा? आप हम लोगों के पीछे ट्रेन से चले आएँ।"

"हिसाब-किताब तुम्हीं दोनो कर लेना।"

"नहीं-नहीं, हम लोग वैसे तो आपकी खिदमत करने को हर वक़्त तैयार हैं, मगर पैसे के मामले में तो आपको ही चलना पड़ेगा।"

नवाब साहब ने कुछ देर सोचने के बाद जवाब दिया—"अच्छा, मैं भी यहाँ से चौथे रोज़ चल दूँगा। तुम दोनो कल ही घोड़ों को लेकर रवाना हो जाओ।"

इसके बाद कमेटी बरखास्त हो गई। सब लोग उठकर चले गए। नजमू लॉटरी का टिकट खरीदने की धुन में पड़ गया।

नवाब लटकन अब्बासअली का जायदादी मुक़दमा हार गए। हालाँकि उन्होंने हाकिमों को डालियाँ पेश करने में भी पैसे को ख़ूब पानी की तरह बहाया, वकील भी एक-से-एक बेहतर किए, मगर नतीजा बरख़िलाफ़ ही निकला, और उनकी ख़याली इमारत मसमसाकर बैठ गई। उनकी नई बेगम साहबा भी, जब नवाब साहब मकनपुर घोड़े बेचने की ग़रज़ से गए थे, नज़ीरा के साथ घर से रफ़ू-चक्कर हो गईं। नवाब साहब ने हालाँकि वापस आकर उनका भी पता लगाने की भरसक कोशिश की, मगर पता न चला। आख़िरकार मजबूर होकर बैठ रहे।

अब नवाब साहब सोचने लगे कि तक़दीर ने ऐसा पलटा खाया है कि सब चौपट हो गया! नजमा, बेगम, दोनो ही घर से भाग गईं, और साथ ही हज़ारों का मालो मता भी ले उड़ीं! इधर ज़मींदारी का भी बटवारा फ़हीम ने करा लिया। रही-सही बेच-खोचकर मुक़दमे में लगाई थी, वह भी साफ़ हो गई। लॉटरी में भी मुक़द्दर ने साथ न दिया! अब करें, तो क्या करें। उनका दिमाग़ चक्कर खाने लगा।

अब उन्हें रह-रहकर अब्बासअली पर भी क्रोध आने लगा कि अगर यह कमबख़्त मेरे पास न आता, तो मैं इस

तरह कभी बरबाद न होता। मुझे क्या पड़ी थी कि मुक़दमे की आफ़त अपने सिर लेता। उस कमीने का क्या बिगड़ा ? मैं तो तबाह ही हो गया। और, अब भी मरदूद आता है, नज़रसानी का मशविरा देने।

नवाब साहब अपने ऐसे ही ख़यालों में डूबे हुए थे कि अब्बासअली आ गए। साहब-सलामत करने के बाद एक कुरसी पर बैठते हुए बोले—"अब क्या इरादा है नवाब साहब !"

"काहे का ?" नवाब साहब ने बात टालते हुए कहा।

"यही मुक़दमे के मुतअल्लिक़।"

"मेरा तो कोई इरादा नहीं।" नवाब साहब ने बेदिली से कहा।

"मेरी नाक़िस राय है कि नज़रसानी की दरख्वास्त दे दी जाय।"

"होगा क्या ? हाँ, कुछ रुपयों पर और फिर जायगा पानी।"

"नहीं, यह बात नहीं है नवाब साहब !" अब्बासअली ने अपनी लफ़्ज़ों पर ज़ोर देते हुए कहा—"नतीजा ज़रूर निकलेगा। हाकिमों ने बहुत बड़ी बेईमानी की है, जानते हैं आप ?"

"अरे, बहुत डींग न मारो। मैं तुम्हारी बदौलत मिट्टी में मिल गया। अब ख़ुदा के वास्ते मुझ पर रहम करो।"

"मैंने क्या मिट्टी में मिला दिया आपको?" अब्बास-अली ने जरा गर्म होकर कहा—"आप खुद अपने लालच में फँसे। अगर आज कामयाब हो गए होते, तब?"

'खैर, जो कुछ मैंने किया, अच्छा या बुरा, मेरी तक़दीर से हुआ। अब मैं नजरसानी कराने से बाज़ आया।"

"देखिए, अब भी आप ग़लती पर हैं। मामले पर ग़ौर कर लीजिए। कामयाबी होगी, और जरूर होगी।"

"मैंने खूब ग़ौर कर लिया है।" नवाब साहब ने निहायत रंजीदा होकर कहा—"अब मैं किसी तरह इस ग़ारतगरी में पड़ने को तैयार नहीं।"

"खैर, यह आपकी मरजी रही, मगर आप भूल कर रहे हैं, यह जरूर कहूँगा मैं।"

नवाब साहब झुँझलाकर कुरसी से उठ खड़े हुए, और अंदर चले गए। अंदर पहुँचकर नौकर से बोले—"जाकर बाहर अब्बास से कह दो कि आइंदा से मेरे पास आने की तकलीफ़ न किया करें।"

हुक्म पाकर नौकर बाहर आया, और उसने नवाब साहब का फ़रमान सुना दिया। अब्बासअली भी झुँझलाकर उठे, और घर चल दिए।

नवाब साहब का जीवन अब संकटमय था। कोई आमदनी का .ज़रिया न बचा था। सिर्फ़ आधा गाँव उनके पास था। उसकी आमदनी बहुत कम थी। हालाँकि अब घर में पहले-जैसा ख़र्च न था। क्यों कि फ़हीम, नजमा, नई बेगम, नज़ीरा और उसकी बीवी, ये सब-के-सब जा ही चुके थे, सिर्फ़ नवाब साहब, उनकी बूढ़ी मा, बीवी (बेगम) और पाँच बरस की छोटी बच्ची घर में थे। मगर आमदनी कम होने के सबब से इन सबकी भी गुज़र-बसर बाफ़राग़त न होती थी। नवाब साहब इसी उधेड़-बुन में रात-दिन परेशान रहते थे।

एक रोज़ नवाब लटकन के हाथ में 'रोज़गार' मासिक पत्र का पुराना अंक आ गया। फ़ुरसत में होने की वजह से वह उसे पढ़ने लगे। पढ़ते-पढ़ते एक ख़ास लेख पर उनकी नज़र पड़ी, जिसमें लिखा था कि तिजारत ही पैसा कमाने का सबसे अच्छा ज़रिया है। दुनिया में सभी जगह लोग बहुत-सी चीज़ों को बेकार समझकर छोड़ देते हैं, मगर दिमाग़वाले अगर चाहें, तो मिट्टी से भी सोना बना सकते हैं। बात सही थी। नवाब साहब सोचने लगे वाक़ई, दिमाग़वाले सब कुछ कर सकते हैं। मैं भी

किसी बेकार चीज़ को इस्तेमाल लायक़ बनाकर उसकी तिजारत क्यों न शुरू करूँ ? मुमकिन है, कामयाबी मिले। फिर तो मालामाल होते देर न लगेगी। बस, इस ख़याल के आते ही नवाब साहब मन-ही-मन दुनिया-भर की जानदार और बेजान बेकार चीज़ों की फ़ेहरिस्त बनाने लगे। मूँगफली के छिलकों से लेकर फलेंदे की गुठली तक और चींटियों से लेकर चूहे तक उनके ख़याल दौड़ गए। चूहों की याद आते ही एक तजवीज़ उनके दिमाग़ में आने लगी। फिर क्या था—पूरी स्कीम बात-की-बात में बन गई। स्कीम बनते ही उन्हें ऐसा जान पड़ने लगा, मानो दुनिया की सारी दौलत उनके रूबरू हाथ बाँधे खड़ी हुई है। वह इस नक़्शे को सोच-समझकर मन-ही-मन ख़ुश होने लगे। उन्होंने सोचा, मैं अपनी स्कीम में कामयाब ज़रूर हो जाऊँगा, और मेरी तंगदस्ती भी मजबूरन् मुझे छोड़कर भाग जायगी।

वह यों ही ख़याली पुलाव पका रहे थे कि अंदर से बेगम ने उन्हें बुलवाया। नवाब साहब अंदर पहुँचे। बेगम ने कहा—"मियाँ, घर में घी तो आज है नहीं। मैं कई दिनों से कह रही हूँ, ला दो। तेल ही से दाल बघार दूँ क्या ?"

"मेरे पास आज तो कुछ पैसे हैं नहीं।" नवाब साहब अपना सिर खुजाते हुए बोले—"देखो, दो-एक दिन में घी भी मँगवा दूँगा। आज जैसे बने, वैसे काम निकाल लो।"

"दो-चार रोज़ में कहाँ से आ जायगी दौलत? घर का हाल तो दिनोंदिन ख़राब होता जा रहा है। तुम भले ही तेल से बघारी दाल खा लो, मैंने तो आज तक न खाई है, न खाई जायगी।"

"अरे, यह भी मौक़ा है, निभा लो। मैंने एक स्कीम सोची है।"

"काहे की, घरेलू इंतिज़ाम की?"

"हाँ, तुम घरेलू इंतिज़ाम की भी कह सकती हो। स्कीम है पैसा पैदा करने की।"

"यों तो तुम रोज़ ही ख़याली पुलाव पकाते हो।" बेगम ने ताने-भरे लहजे में कहा।

"नहीं, तुम मज़ाक़ न समझना बेगम।"

"उँह, कौन माथा-पच्ची करे तुम्हारी बातों में। एक स्कीम बनाई बड़ी-सी जायदाद पाने की, वह पा गए! दूसरी बनाई कोठी तिलस्मख़ाना पाने की, वह भी हाथ आ गई! और, अब यह तीसरी स्कीम और बनी है। देखो, अल्लाह क्या रंग लाए?"

"नहीं-नहीं, तुम अभी उसे समझी ही नहीं। अगर समझ लो, तो ख़ुदा क़सम फड़क जाओ। और सब कुछ फ़ेल हो गया, मगर यह स्कीम तो फ़ेल होने से रही। सुनो, मैंने सोचा है, एक रोज़गार........"

बेगम ने बीच ही में सवाल कर दिया—"कैसा?"

"सुनो, बताता तो हूँ। मैं करूँगा एक रोज़गार। आज तक

किसी की भी समझ में जो न आया होगा। बस, फिर देखना, हम घर बैठे-बैठे ही मजे उड़ाते हैं।"

"काहे का रोजगार करने की सोची है ?"

"रोजगार करूँगा, बस इससे ज्यादा मैं तुम्हें बताऊँगा नहीं। कैसा भी हो, मगर आज तक किसी ने ऐसा रोजगार कभी किया नहीं।"

"तुम्हारी तरह कोई बेवक़ूफ़ी का रोजगार नहीं सोच सकता।" बेगम ने मुसकराते हुए कहा।

"लो, तुम तो मुझे बेवक़ूफ़ बनाने लगीं। जानती हो, यह रोजगार समझ में आएगा, तो किसी गहरे दिमाग़वाले को ही।"

"अच्छा, तो बताइए, रोजगार कैसा होगा ?"

"बस, यही न बताऊँगा। जब मैं करूँ, तब देख लेना।"

"बता भी दो, आख़िर क्यों नहीं बताओगे ?"

"औरतों में कमज़रफ़ी का माद्दा ज्यादा होता है। तुम्हारे मुँह से बात निकली और लोगों के कान में पड़ी कि बस मेरी स्कीम बेकार हुई। तब क्या, और लोग भी वही रोजगार करने लगेंगे।"

"अच्छा, मैं किसी से भी ज़िक्र न करूँगी।"

"नहीं-नहीं, मैं ऐसा नहीं कर सकता। औरतें बहुत कमज़र्फ़ होती हैं। उनके पेट में बात रुकती ही नहीं। भला, सोचो तो, दिमाग़रेज़ी करूँ मैं, और उसका नफ़ा उठाएँ दूसरे !"

"अच्छा, अच्छा न कहो। भाड़ में जाओ तुम, और तुम्हारी स्कीम।" बेगम ने तुर्शरुई के साथ कहा।

"तुम तो होने लगीं आपे से बाहर। तुम्हें आम खाने से ग़रज़ या पेड़ गिनने से?"

"अच्छा, कह तो दिया, न बताओ। मगर कुछ करके दिखाओ, तभी जान लूँगी।"

"जान ही नहीं लोगी, मेरी अक़्ल की क़ायल हो जाओगी। अच्छा, खाने में क्या देर है? मुझे भूख बहुत लगी है।"

"देर कुछ नहीं है। आओ, तेल से बघारे लेती हूँ दाल।"

नवाब साहब खाना खाने बैठ गए।

[२८]

कानपूर में, आठ महीने में ही, नजमा ने अपने यार नूरू के साथ ज़िंदगी की सारी बहार देख ली। उसके सुनहले ख्वाब सब धीरे-धीरे ख़ाक में मिल गए, और ख़ाक में मिल गया उसका रूप और यौवन, जिस पर वह इठलाया करती थी! अब दोनो बात-बात में एक दूसरे से चिढ़ जाते और मार-पीट तक की नौबत आ जाती। पास के रुपए उड़ गए, जेवर बिके, कपड़े बिके, और आख़िरकार खाने-पहनने का भी ठिकाना न रहा। थिएटर की नौकरी पहले ही छूट चुकी थी। उस रोज़, सबेरे तड़के का गया हुआ नूरू बड़ी रात को घर लौटा, और नजमा से बोला—'सुनती हो, कल सुबह हम लोग यहाँ से जा रहे हैं बाहर।"

नजमा ने चौंककर पूछा—"क्या नौकरी लग गई कहीं?"

"नहीं तो; मगर लग जाने की उम्मीद है। अमृतसर जाना होगा।"

"मगर जाओगे कैसे? रुपए किराए के?"

"एक दोस्त से उधार ले आया हूँ साठ रुपए—बहुत हैं ख़र्च के लिये, क्यों न?"

"ठीक है, कल सुबह चल देंगे हम लोग। मगर इस घर का किराया? मकान-मालिक जाने कब देगा सामान लेकर?"

उँह, यहाँ सामान ही कौन-सा रक्खा है। छोड़ो ये चारपाइयाँ और बर्तन ख़रीद लिए जायँगे।"

"जैसा कहो ?"

"मेरी तो यही राय है।"

अगले दिन दोनो-के-दोनो सुबह की ट्रेन से चल पड़े। तीसरे दिन सबेरे अमृतसर पहुँचकर एक मुसाफ़िरख़ाने में जाकर ठहरे। बाज़ार से पूरियाँ लाकर दोनो ने भर पेट खाईं, फिर नूरू बाहर चला गया।

तीसरे पहर नूरू फिर वापस आया—उसके साथ एक मोटा-सा पंजाबी था। नजमा आड़ में हो गई। नूरू बोला—"अजो, इधर आओ। इनसे क्या परदा, यह अपने ही हैं ?"

नजमा शर्माती हुई क़रीब आ खड़ी हुई।

पंजाबी बोला—"बैठ जाइए, आप तो खड़ी हैं।"

नजमा चुपचाप किनारे पड़ी हुई चारपाई पर बैठ गई। पंजाबी ने बड़े ग़ौर से नजमा को देखा—उसके सिर से पैर तक नज़र डाली, फिर नूरू की तरफ़ देखकर कहने लगा—"दोस्त! ठीक है। तुम एक घंटे बाद होटल में मिलना।"

इसके बाद वह उठा, और कमरे से बाहर चला गया। नजमा ने पूछा—"कौन था यह शख्स ?"

नूरू ने जवाब दिया—"यही मुझे नौकरी दिला रहा है अपने दोस्त के कारख़ाने में।"

"मुझे तो कोई अच्छा आदमी नहीं जान पड़ता।"

"क्या ख़ूब! मुझ पर इतना मेहरबान है, तुम क्या जानो। क्या सूरत-शक्ल से ही अच्छा हो, तब उसे अच्छा कहा जाय ?"

"नहीं, उसकी चाल-ढाल और बातचीत का ढंग ही बद-माशों-जैसा जान पड़ा मुझे। ऐसे आदमियों से होशियार रहना चाहिए तुम्हें।"

नूरू ने कुछ जवाब न दिया। वह बीड़ी सुलगाने लगा।

एक घंटे बाद नूरू इंपीरियल होटल के सात नंबर कमरे में पहुँचा। वही पंजाबी कमरे में बैठा हुआ कुछ काग़ज़ात देख रहा था। नूरू को देखते ही बोला—'शाबाश दोस्त! मैं तुम्हारा इंतिज़ार कर ही रहा था।"

इतना कहकर उसने कुरसी आगे बढ़ा दी। नूरू बैठ गया। पंजाबी ने खूँटी पर टँगे कुरते की जेब से नोटों की एक मोटी-गड्डी निकालकर नूरू के सामने मेज़ पर रख दी, और कहा—"गिन लो।"

नूरू ने नोट गिने, और चौंककर बोला—"सिर्फ़ पंद्रह सौ ? तुमने कहा था, पसंद आने पर मँहमाँगी रक़म दूँगा ? यह तो बहुत कम है!"

पंजाबी हँसकर कहने लगा—"मियाँ! पंद्रह सौ रुपए थोड़े नहीं होते। माल मुझे पसंद ज़रूर है, इससे ज़्यादा क़ीमत का हर्गिज़ नहीं। निचोड़े हुए आम का सौदा कर रहा हूँ तुम पर तरस खाकर। अभी इसकी तैयारी, खिलाई-

पिलाई में दुगनी रक़म गल जायगी, यह भी पता है तुम्हें ?"

नूरू ने कुछ और कहना बेकार समझकर नोटों की गड्डी जेब में रक्खी, और बोला—"तो शामवाली गाड़ी पर ही ठीक रहा न ?"

पंजाबी ने जवाब दिया—"हाँ, साढ़े छ पर छूटती है। सेकेंड क्लास का डिब्बा रिज़र्व है मेरा उसी में आ जाना।"

नूरू वहाँ से चलकर मुसाफ़िरख़ाने में आया, और घबराहट ज़ाहिर करते हुए बोला—"ग़ज़ब हो गया नजमा ! पुलिस हमारे पीछे है ?"

"पुलिस ?" नजमा काँप उठी, और बोली—"अब क्या होगा ?"

"कुछ नहीं, चलो स्टेशन। मेरे दोस्त पेशावर जा रहे हैं, उनका सेकेंड क्लास का पूरा डिब्बा रिज़र्व है, तुमको उनके साथ बिठा दूँगा, मैं थर्ड में अलग जा बैठूँगा। कोई पूछे, तो कह देना, मैं अब्दुलग़नी की बीवी हूँ। मेरे उन पंजाबी दोस्त का नाम अब्दुलग़नी है।"

"ऐसा कैसे कहूँगी ?"

अहमक़ हो ख़ासी ! पुलिस से बचने के लिये रास्ते में ऐसा कहना पड़े, तो कह देना। कह देने से तुम कुछ उसकी बीवी थोड़े ही बनी जाती हो।"

उसी शाम को साढ़े छ बजे नजमा को पंजाबी के साथ

सेकेंड क्लास के डब्बे में नूरू ने बिठा दिया, और ख़ुद बराबर के थर्ड क्लास में जा बैठा।

गाड़ी ज़रा देर बाद चल पड़ी, मगर नूरू गया नहीं।

वह दूसरी तरफ़ से वहीं अमृतसर के स्टेशन के प्लैटफ़ार्म पर उतर पड़ा। गाड़ी की तरफ़ देखकर वह मुस्कराया, बीड़ी सुलगाई, और जेब के भीतर रक्खी नोटों की गड्डी टटोलता हुआ स्टेशन के फाटक से बाहर निकल गया।

नवाब लटकन ने बड़ी दौड़-धूप करके अपने गाँव से कुछ रुपया वसूल किया। जब उनके पास पैसा हो गया, तो शहर में डुग्गी पिटा दी कि जो कोई चूहे पकड़कर लाएगा, उसे दो पैसे फ़ी चूहे क़ीमत दी जायगी। साथ ही एक बड़ा-सा जाली-दार क़ैदखाना चूहों के लिये बनवाया, जिसमें बड़े इतमीनान से कम-से-कम दस हजार चूहे बंद करके रक्खे जा सकें। क़ैदखाने के बनवाने में पूरे तीन सौ रुपए लग गए थे।

सारे शहर में धूम मची हुई थी कि आखिर नवाब लटकन साहब चूहे खरीदकर करेंगे क्या? मगर लोगों ने चूहेदान लगाकर ख़ूब चूहे पकड़े और नवाब साहब के पास ले गए। नवाब साहब ने फ़ी चहा दो पैसे के हिसाब से दाम देकर चूहे ले लिए, और उन्हें क़ैदखाने में बंद कर दिया।

अब तो जोरों के साथ चूहों की खरीदारी चालू हो गई। जिसे देखिए, वही बाजार से एक चूहादान खरीदकर हाथ में लटकाए चला आ रहा है। लोहारों ने भी रात-दिन चूहेदान बनाना ही शुरू कर दिया, क्योंकि बाजार के दूकानदारों की रोजाना ही माँग बढ़ती जा रही थी। इस तरह नवाब साहब के इस नए रोजगार के साथ ही और लोगों का रोजगार भी खूब तरक़्क़ी पर पहुँचा।

नवाब साहब ने अपने क़ैदख़ाने में क़रीब-क़रीब छः हज़ार चूहे क़ैद कर लिए। उनको ज़िंदा रखने के लिये कम-से-कम बीस सेर नाज नवाब साहब को रोज़ाना देना पड़ रहा था। बेगम साहबा नवाब साहब के इस काम को महज़ बेकार समझती थीं। उन्हें यह रोज़ाना का बीस सेर नाज का ख़र्च भी बहुत अखरता था। आख़िरकार एक दिन वह मजबूर होकर बोलीं—"आपका यह काम कुछ समझ में तो आता नहीं मेरी। आख़िर आप इन सबका क्या करेंगे?"

"अरे, फिर तुमने वही पिछली बात छेड़ी! अब तो मेरी स्कीम चालू ही है, जो कुछ मैं करता हूँ, बस देखती जाओ।"

"देखती जाऊँ ख़ाक! मेरे ख़याल से कम-से-कम ३००) तो इन क़ंमबख़्तों की ख़रीदारी में बिगड़ गया। ऊपर से बीस सेर नाज और घाते में जाता है रोज़। कहाँ तक......"

"तुम इस ख़र्चे की फ़िक्र करती हो बेकार! यह भी तो देखना कि नफ़ा होता है इस ख़र्चे का कै गुना।"

"आख़िर वह नफ़ा होगा किस दिन? ये चूहे भी क्या लड़ाई पर भेजे जायँगे?"

"हाँ, जंग पर ही भेजे जायँगे?"

नवाब साहब ने देखा, बेगम की तेवरियाँ चढ़ी हुई

हैं। कहीं बिला वजह झगड़ा न खड़ा हो जाय, इस कारण घर से बाहर निकल आए।

चलकर एक सेठजी की दूकान पर पहुँचे। बोले—"सेठजी! आदाब अर्ज़ है।"

सेठजी बोले—"आइए नवाब साहब! आदाब। कहिए, आज किधर घूम पड़े?"

"आपके ही पास तक आया हूँ। सोचा कि मुद्दत से मुलाक़ात न हुई, आज मुलाक़ात ही कर आऊँ चलकर।"

"कहिए, मिज़ाज तो अच्छा है आपका?"

"हाँ, सब अल्लाह का फ़ज़ल है।" नवाब साहब ने एक कुरसी पर बैठते हुए कहा।

"बाल-बच्चे तो मज़े में हैं आपके?"

"हाँ, सब मज़े में हैं, लड़का नालायक़ निकला, मैंने उसे घर से निकाल दिया।"

"अजी, इस बात का कहना ही क्या, लड़के होते हैं नालायक़ ही आजकल के। घर से निकाल दिया, बड़ा अच्छा किया आपने। अब ठोकरें खाते फिरेंगे बच्चू, तब ठिकाने आएगी अक़ल।"

"हाँ, यही सोचकर तो मैंने निकाल भी दिया उसे।"

"ज़मींदारी का क्या हाल है? लगान तो चला नहीं होगा। परसाल से क़हत है।"

"ख़ैर, थोड़ा-बहुत चला ही लगान। न चलता, तो काम कैसे चलता।"

"और क्या हाल-चाल हैं?" सेठजी ने गिलौरीदान से पान निकालकर देते हुए कहा—"लीजिए, पान खाइए।"

"और कोई बात नहीं।" नवाब साहब मुँह में पान दाबते हुए बोले—"आजकल एक मुक़द्दमे की लथेड़ में पड़ गया हूँ। उसी की फ़िक्र हर वक़्त खाए जा रही है बस।"

"कैसी?"

'ख़र्चे-वर्चे की।"

"मुक़द्दमे में ख़र्च होता ही है।"

"तो बस, आजकल रुपए की ही कमी है, उसी की फ़िक्र है, किसी तरह पैसा इकट्ठा किया जाय।"

"फ़िक्र ज़रूर करना चाहिए। मुक़द्दमे का काम बग़ैर पैसे के नहीं चलता।" सेठजी ने संजीदगी के साथ कहा।

"मैंने तजवीज़ तो कर लिया है एक मेहरबान दोस्त को, मगर अभी उनसे कहा नहीं।"

कहना तो चाहिए आपको?"

"यही सोचता हूँ, ज़माना बड़ा ख़राब है, शायद एतबार न करें।"

"नहीं-नहीं, यह कोई बात नहीं। दुनिया के सारे काम यों ही चलते हैं। कौन एतबार नहीं करता? सभी करते हैं। फिर आपके बारे में तो कहना ही क्या।"

"तो खैर, मैंने उन मेहरबान दोस्तों में आप ही को मुंतख़िब किया है।" नवाब साहब ने सेठजी के चेहरे पर गहरी नज़र जमाकर कहा।

"ऐं! मुझको !!" सेठजी अकबकाकर बोले—"मैं तो आपकी इमदाद करने लायक़ भी नहीं हूँ।"

"मुझे कुछ ज़्यादा रुपयों की ज़रूरत नहीं है।" नवाब साहब ने बड़ी नर्मी से कहा—"सिर्फ़ एक हज़ार रुपया आप दे दीजिए।"

"अरे भाई कहाँ से लाऊँगा एक हज़ार रुपया? यह भी तो सोचिए।"

"ऐसा न कहिए सेठजी! आपके लिये यह रक़म कौन मुश्किल है? लाखों रुपयों का जिसका ग़ल्ले का गोदाम हो, उसके लिये १,०००) कौन-सी बड़ी बात है?"

"नहीं भाई! मैं इंतिज़ाम न कर सकूँगा।"

"देखिए, सेठजी! आपका और मेरे वालिद साहब मरहूम का बड़ा गहरा दोस्ताना रहा है। लेन-देन भी रहा है। मैं उसी रिश्ते से आपको चचा मानता हूँ। इस वजह से सीधा आपके पास चला आया कि यहाँ मेरी ज़रूरत हल हो जायगी, और आप ऐसा फ़रमाते हैं!"

"जिनसे वास्ता था, वह उनके साथ गया। मेरा आपका वैसा वास्ता आज तक न क़ायम हुआ। मुझे माफ़ कीजिए।"

"तो एक बात है सेठजी!"

"क्या ?"

"मैंने कुछ चूहे भी पकड़ रक्खे हैं।" नवाब साहब ने आँखें बदलकर कहा—"जानते हैं आप कितने ? पूरे ६,८७५ चूहे। अगर आप सीधे तौर से राह पर न आए, तो याद रखिए, वे चूहे हैं और आपका गोदाम ! एक हल्ले में ही सफ़ाया !"

सेठजी ने घबराकर कहा—"सच ?"

नवाब साहब ने जवाब दिया—"और नहीं तो क्या !"

"ऐसा न कीजिएगा नवाब साहब।" सेठजी ने खुशामदाना लहजे में कहा—"मैं दोनों-दुनिया कहीं का न रह जाऊँगा !"

"वह तो मुझे करना ही पड़ेगा।"

सेठजी ने कुछ सोचकर जवाब दिया—"अच्छा, ख़ैर। अगर मैं रुपया दे दूँ आपको, तब तो कोई बखेड़ा न होगा ?"

"तब क्या मैंने भंग खाई है, जो ग़लतू चूहे छोड़ता फिरूँ।"

"अच्छा, कल शाम को तशरीफ़ लाएँ आप। मैं रुपए का इंतिज़ाम कर रक्खूँगा।"

"बेहतर है। कल शाम को सही।"

नवाब साहब उठकर अपने घर चले आए।

सेठजी ने पुलिस-स्टेशन (थाने) में जाकर रिपोर्ट लिखा दी कि नवाब लटकन ने अब खुली डकैती अख्तियार की है, वह यों कि उन्होंने बहुत बड़ी तादाद चूहों की पाल रक्खी है। उन्होंने खुद अपनी जबान से मुझसे कहा है कि मेरे पास ६,८७५ चूहे हैं। धनी-मानी आदमी को धमकी देकर कहते हैं कि अगर तुम मुझे मेरा मुँहमाँगा रुपया न दोगे, तो मैं तुम्हारे घर में उन चूहों को छोड़ दूँगा। मुझसे भी इसी तरह उन्होंने एक हजार रुपया माँगा है।

थाने में रिपोर्ट लिख जाने के बाद एक थानेदार साहब नवाब लटकन के मकान पर पहुँचे।

दिन के दस बजे का वक़्त था। नवाब साहब बाहर बैठे हुए हुक़्क़े का लुत्फ़ उठा रहे थे। उनके सामने धुएँ के बादल छाए हुए थे। इसी वक़्त थानेदार साहब पहुँचे। साहब-सलामत हुई। नवाब साहब ने थानेदार को मुख़ातिब करते हुए कहा—"आज कैसे तशरीफ़ ले आए आप ? कहिए, ख़ैर तो है ?"

थानेदार साहब कुरसी पर बैठते हुए बोले—"आपके ऊपर एक रिपोर्ट हुई है जनाब ! उसी की तफ़तीश में आया हूँ।"

नवाब साहब ने हैरानगी के साथ पूछा—"मुझ पर ?"

"हाँ जनाब।"

"कैसी ?"

"सुना गया है, आपने चूहे पाले हैं ?"

"कौन कहता है ?"

"सेठ गोपालदास।"

नवाब साहब ने अकचकाकर कहा—"बिलकुल ग़लत, उसने बहका दिया ख़्वामख़्वाह आपको।"

"फिर उसने ऐसी रिपोर्ट लिखाई क्यों ?"

"यह वह जाने। हाँ, इतना ज़रूर है कि वह अदावत मानता है मुझसे। लीजिए, पान खाइए।" ख़ासदान से पान निकालकर नवाब साहब ने थानेदार साहब को देते हुए कहा।

इतने में चूहों की चें-चें थानेदार साहब के कानों में पड़ी। वह बोले—"नवाब साहब! आपके कमरे में कुछ आहट मिलती तो है चूहों की ?"

"भला, ऐसा कौन-सा मकान होगा।" नवाब साहब ने ज़रा मुसकराकर कहा—"जिसमें चूहे न हों। मेरी तो नाक में दम है इन सालों से। जिस चीज़ को देखो कुतरे बैठे हैं।"

"और, इस कमरे की तरफ़ से कुछ बदबू भी तो आ रही है।"

"हाँ, आती है। अभी महसूस हुई थी मुझे भी। बिल्ली ने

एक चूहे को मारकर कमरे में ही डाल दिया। वह पड़े-पड़े सड़ गया। नौकर आ जाय, अभी साफ़ कराता हूँ कमरे को।"

नवाब साहब ने जेब से एक १०) वाला नोट निकालकर थानेदार साहब को देते हुए कहा—"लीजिए, पान खाने के लिये रख लीजिए।"

"आख़िर क्यों?" थानेदार साहब ने नोट जेब में रखते हुए कहा।

"आपके तकलीफ़ करने के सिलह में कुछ तो होना ही चाहिए।"

"ख़ैर, जैसी आपकी मरज़ी। मगर सेठ गोपालदास बड़ा बदमाश है। आपको बिला वजह ही ज़लील करना चाहा उस कमबख्त ने। मगर आप मेरी तरफ़ से इतमीनान रक्खें।"

"अरे साहब! इन सेठों की कुछ न पूछिए। यह सेठ बने कैसे? दूसरों को ठगकर ही तो बने। आपका ही तो भरोसा है मुझे।'

थानेदार साहब ने कुरसी से उठते हुए कहा—"अच्छा साहब, जाता हूँ। आदाब।"

थानेदार साहब चले गए।

सारा दिन गुज़र गया।

रात को ठीक बारह बजे नवाब साहब ने चूहों का क़ैद-ख़ाना एक ठेले पर लदवाया, और नब्बन, करीमू को साथ लेकर सेठजी के गोदाम का रास्ता पकड़ा।

गोदाम उनके मकान से थोड़ी ही दूर पर था। गोदाम के फाटक पर एक सिपाही पहरा दे रहा था। जब नवाब साहब पहुँचे, तो करीमू ने सिपाही को पकड़कर एक तरफ़ कर दिया, और फाटक खोलकर चूहों के क़ैदखाने की खिड़की गोदाम की तरफ़ खोल दी। फिर ठेला वापस कर दिया।

सेठजी रोज़ाना ही रात के १२ बजे के बाद खाना खाने के आदी थे। वह जब खाना खाकर छुट्टी पाते थे, तभी गोदाम में ताला डलवाते थे। अभी दूकान पर ही थे कि चूहों की आफ़त की उन्हें ख़बर मिली। उठे, और फ़ौरन् भागकर गोदाम में आए।

बहुतेरे चूहे उनके मकान में घुस गए थे। मुद्दत के भूखे थे बेचारे। जाते ही जिस चीज़ को पाया, काटने लगे। बच्चे आराम से पड़े सो रहे थे। चूहों ने उन्हें भी काटा। बेचारे चीख़ने लगे। औरतें भी इस आफ़त से न बच सकीं।

सेठजी दौड़कर अंदर पहुँचे। देखा, हवेली में एक कोहराम मचा हुआ है। सब-के-सब सख़्त परेशान हैं। अब भी हवेली के अंदर चूहों की धमाचौकड़ी मची हुई थी। पचासों इधर से उधर और उधर से इधर भागते फिर रहे थे। ख़ैर। जब सेठजी गोदाम में आए, तो देखा, सैकड़ों चूहे ग़ल्ले पर पिले हुए हैं। सख़्त परेशानी में पड़ गए।

कुछ सोच-समझकर सेठजी सीधे भागे नवाब साहब के मकान की तरफ़। नवाब साहब तो इस ताक में थे ही।

रास्ते में ही मिल गए, बोले—"क्यों, क्यों, कहाँ भागे जा रहे हैं आप ?"

सेठजी ने घूमकर नवाब साहब की तरफ़ देखा, और गिड़गिड़ाकर बोले—'ग़ज़ब किया आपने ! शाम को क्यों नहीं आए मेरे पास ? जब मैं आपसे कह चुका था।"

ख़ैर, मैं नहीं आया, न सही। मैंने ग़लती की, मगर अब आप लिखा दें यह भी रिपोर्ट कि नवाब ने मेरे घर में चूहे छोड़ दिए।" नवाब साहब ने धमकाते हुए कहा—"अभी तो मैंने सिर्फ़ इतने ही छोड़े हैं, थोड़ी ही देर में चार हज़ार और आ रहे हैं।"

सेठजी ने झुककर नवाब साहब के पैर पकड़ लिए, बोले—"ऐसा न कीजिए, मर जाऊँगा मैं।"

"तो रुपए देते हैं आप ?"

"हाँ, ५००) दे सकूँगा। ज़्यादा का इंतिज़ाम न हो सका।"

"ख़ैर, लाओ ५००) ही सही, बाक़ी का फिर इंतिज़ाम कर देना।"

"अच्छा।"

नवाब साहब सेठजी के साथ दूकान पर आए, और रुपया लेकर अपने घर चले गए।

बेगम साहबा बहुत ख़ुश हैं, नवाब साहब ने उन्हें रुपए लाकर दे दिए थे। सबेरे का वक़्त था। बेगम से नवाब साहब ने कहा—"देखा मेरा रोज़गार! है नफ़े का?"

"हाँ, आज समझ में आई तुम्हारी स्कीम," बेगम ने मुस्कराकर कहा—"मगर खुली डकैती है।"

"अरे, तुम नहीं जानतीं बेगम! यह बड़पेटू सेठ इसी क़ाबिल हैं। आख़िर हम लोगों को ठगकर ही तो सारी रक़म जमा की है इन्होंने।"

"ख़ैर, कुछ भी सही, मगर है डकैती ही।"

"हुआ करे, हमें इसकी क्या परवा! मगर स्कीम हमारी है ठीक।"

"स्कीम बिलकुल ठीक है," बेगम ने अपने सिर का दुपट्टा सँभालकर कहा—"मगर क्या आइंदा भी चालू रहेगी?"

"हाँ। इरादा तो यही है अभी।"

"चूहों का तो अब सफ़ाया हो चुका है?"

"इसकी फ़िक्र ही क्या? ख़रीदारी जारी हो जायगी। अब की बार बजाय आध आना के पूरा एक आना क़ीमत कर दूँगा, तब तो उम्मीद है, बहुत जल्द काफ़ी तादाद में इकट्ठे हो जायँगे।"

"तो अब की बार कौन-सा सेठ ताक रक्खा है आपने ?"

"यह कोई सोचने की बात है। उस वक़्त जो सामने पड़ गया। अच्छा, नाश्ता लाओ।"

नवाब साहब ने नाश्ता किया, और बाहर चले गए।

चूहों का ख़रीदारी जारी हो गई, और क़ीमत लगा दी गई एक आना फ़ी चूहा। अब तो कसरत से चूहे नवाब साहब के घर आने लगे।

अब की बार नवाब साहब ने चूहे ख़रीदे क़रीब बीस हज़ार, जो अपने क़ैदख़ाने में हर वक़्त धमा-चौकड़ी मचाए रहते थे।

एक दिन दिल्ली से नवाब साहब की बहन बच्चों-समेत आ गईं। उन्हें आए हुए अभी दो-चार दिन ही गुज़रे थे कि उनकी छोटी लड़की, जो अभी सिर्फ़ चार बरस की थी, चूहों के क़ैदख़ाने के पास पहुँची। उसने खेल-ही-खेल में उसकी खिड़की खोल दी। चूहे एकदम बाहर निकल पड़े। मुद्दत के भूखे चूहे लड़की पर एक साथ टूट पड़े। उसकी उँगलियाँ, होंठ, पाँव, पीठ ग़रज़ कि जहाँ चाहा, दाँतों से काटा। हज़ारों की तादाद में चूहे हवेली में दाख़िल हो गए।

औरतें खाना पकाने की तैयारी में थीं। साग वग़ैरा काटा जा रहा था। चूहे जाकर तरकारियों पर ही नहीं, औरतों पर भी चढ़ गए, और ख़ूब काटने लगे। सारे घर में कोहराम मच गया! जिधर नज़र जाती थी, सिवा चूहों के और कुछ न दिखाई देता था। यहाँ तक कि औरतों और बच्चों ने

मजबूर होकर रोते-चीख़ते घर ही ख़ाली कर दिया, और पड़ोसियों के यहाँ जा बैठे।

अब भूखे चूहे बड़ी आज़ादी के साथ सारे घर में घूमने लगे। जिस चीज़ को खाने लायक़ पाया, उसे खाया। न खानेवाली चीज़ों को भी काट-पीटकर बरबाद किया। कपड़े भी, जो ट्रंकों से बाहर फैले पड़े थे, ख़ूब सत्यानाश किए।

नवाब साहब मकान पर मौजूद न थे। जब वह बाहर से शाम को आए, तब उन्हें अपने घर की यह कैफ़ियत मालूम हुई। बहुत परेशान हुए। हवेली के अंदर पहुँचकर देखा, चूहे अब तक घर में दौड़ लगा रहे थे।

दो-तीन दिन तक नवाब साहब और औरतें-बच्चे मकान में न आ सके। जब चूहों का ज़ोर कम हुआ, तब कहीं नवाब साहब को मकान के अंदर बैठने की जगह मिली। उनका चूहों का रोज़गार एकदम ही ख़त्म हो गया।

नवाब साहब ने असली माल भी सेठजी से पाँच सौ रुपए में ऐंठ ही लिए, मगर उनमें से आर्फ़ रक़म दुबारा चूहों की ख़रीदारी में ख़र्च हो चुकी थी। बाक़ी रुपया ख़ानगी ख़र्च में आ गया। नवाब साहब फिर [illegible] तीन-तीन हो गए!

एक रोज़ घर के आँगन में बैठे हुक़्क़ा गुड़गुड़ा रहे थे कि बेगम साहबा ने पूछा—"कहिए, अब क्या सोचा है आपने? घर का ख़र्च तो चलाए नहीं चलता, कहीं से एक पैसे की आमदनी नहीं!"

नवाब साहब ने एक ठंडी साँस लेकर जवाब दिया—"अल्लाह मालिक है—वही कोई ज़रिया निकालेगा!"

"ठीक है, हाथ पर हाथ धरे बैठे रहिए ख़ुदा के सहारे! मुँह में नेवाला पहुँच ही जायगा—हाय री क़िस्मत! क्या सूझी थी चूहों का रोज़गार करने की, सारे घर का ही सफ़ाया हो गया!"

"ये सब वक़्त के राग हैं, कुछ भी कहो। उस रोज़गार में ऐब क्या था? ज़ुबेदा बच्ची उस रोज़ चूहों का क़ैदख़ाना अगर

न खोलती, तो हमें यह दिन देखना ही क्यों पड़ता! हज़ारों की रक़में रोज़ाना घर बैठे लोग दे जाते।"

"मगर अब होगा क्या? ज़मींदारी भी साफ़, दीगर कोई सिलसिला नहीं, पेट भरने का सवाल सामने है। कुछ सोचा है आपने?"

"सोच-ही-सोच में तो घुलता जा रहा हूँ दिन-रात!" इतना कहकर नवाब साहब उठे, और बाहर बैठक में चले गए।

वहाँ आराम-कुरसी पर लेटकर उन्होंने आँखें बंद कर लीं, और गहरे ख़यालों में डूब गए। एकाएक उधर से सड़क पर सिनेमा का इश्तिहार बाँटती हुई मोटर-लॉरी निकली, जिस पर ग्रामोफ़ोन बज रहा था, और लाउड स्पीकर के ज़रिए उसकी आवाज़ तेज़ और साफ़ सुनाई देती थी। नवाब साहब सोचने लगे—कैसा तरीक़ा निकाला है इश्तिहारबाज़ी का! वाक़ई इश्तिहारबाज़ी भी एक हुनर है, मगर हुनर समझकर दिमाग़ लगाया जाय इसमें तब। और रोज़गार-पेशा लोग इश्तिहारबाज़ी में ही हज़ारों ख़र्च कर देते हैं! बस, ज़रा-सी अक़्ल की ज़रूरत है। नए-नए तरीक़े अख़्तियार किए जायँ इश्तिहारबाज़ी के—लाखों के वारे-न्यारे हैं फिर तो!

ख़याली समुद्र में वह इसी तरह डूबते-उतराते जाने क्या मनसूबे बाँध रहे थे कि इतने में उनके चेहरे पर मुस्कराहट

आ गई। वह कुरसी से उछल पड़े, और लपककर, भीतर आँगन में पहुँचकर बोले—"फ़हीम की मा ! बस काम फ़तेह ! मुँह मीठा कराओ !"

बेगम चौंक पड़ीं—नवाब साहब के दिमाग़ में फ़ितूर पैदा हो जाने का उनका शक पक्का हो गया, मगर बोलीं—"बैठे-बैठे और कोई स्कीम बना डाली क्या ?"

"हाँ, है अभी स्कीम ही, कह तो दिया, अमल में आ जाय, तब की बात है।"

"अब की बार तो घर में पैसा भी नहीं है। कैसे चालू करोगे अपनी स्कीम ?"

"रुपए की ज़रूरत ही नहीं होगी अब की बार।"

"अच्छा ! ऐसी कौन-सी स्कीम है ? ज़रा बताइए तो।"

"अब की बार की स्कीम धोबियों के पेशे से ताल्लुक़ रखती है।"

"उसमें क्या होगा ?"

"बस, घर बैठे ही आएगी रक़म।"

"अरे, बहुत डींग न मारो।" बेगम ने ताने के लहजे में कहा।

"तुम ग़लत समझती हो, तो समझो; मगर उसका नतीजा वक़्त पर देख लेना।"

"अच्छा ख़ैर, कोई मतलब नहीं हमें। स्कीम कब तक चालू होगी तुम्हारी ?"

"बस, अब तुम उसे चालू हुई ही समझो; देर है, तो सिर्फ़ एक-आध दिन की ही।"

"तो चालू करो, देखूँ तुम्हारा यह भी तमाशा।"

नवाब साहब हवेली से बाहर निकल आए।

उन्होंने अख़बार में नोटिस छपवाया कि हमें सुपरवाइज़रों की ज़रूरत है, तनख़्वाह हस्ब लियाक़त दी जायगी। अब क्या था, दरख़्वास्तों पर दरख़्वास्तें आने लगीं। लखनऊ के ही बहुतेरे बेकार लोग उनकी सेवा में पहुँचे। नवाब साहब ने हरएक की अर्ज़ी स्वीकार कर उन्हें हाज़िर होने का हुक्म दे दिया। जो भी हाज़िर हुए, उन्हें समझाया कि आप लोग हर शहर, हर कस्बे में दौरा करके जल्द-से-जल्द एक फ़ेहरिस्त तैयार करने की कोशिश करें, जिसमें वहाँ के कपड़े धोने का पेशा करनेवालों का पूरा-पूरा नाम और पता हो।

बाहर का कमरा दफ़्तर बना दिया गया।

हर शख़्स को एक-एक ज़िले का सुपरवाइज़र बनाकर उन्हें अपने-अपने काम पर जाने के लिये नवाब साहब ने हुक्म सुना दिया।

एक मुलाज़िम ने पूछा—"आपने तनख़्वाह नहीं खोली, कितनी-कितनी दी जायगी हम लोगों को?"

यह फ़ैसला तो तब हो सकेगा, जब आप लोग अपना-अपना काम कर हमारे पास तफ़सील भेजेंगे।" नवाब साहब ने शानदार लहजे में जवाब दिया।

"अच्छा, हम लोगों को ज़ाद राह क्या मिलेगा ?"

"अभी कुछ नहीं मिल सकेगा, क्योंकि यह काम बड़ी जाँफ़िशानी का है। मुझे भी तो देखना है कि आप लोग इसे बाक़ायदा अंजाम दे सकेंगे या नहीं। अभी अपने पास से खर्च करो। जिन लोगों का काम बेहतर होगा वे मुस्तक़िल कर दिए जायँगे, और आइंदा तनख़्वाह में यह सारा ख़र्च जोड़ दिया जायगा।"

इस हुक्म को सुनकर बहुतेरे तो खिसक गए। जो बिलकुल बेकार थे, और जिन्हें संसार में कहीं भी कोई नौकरी नहीं मिल रही थी, वे बेचारे अपने-अपने घरों से कुछ रुपयों का इंतिज़ाम करके वापस आ गए, और नवाब साहब के तजवीज़ किए हुए ज़िलों पर तैनात होकर चल दिए।

[३३]

शहर में काफ़ी हलचल थी कि नवाब लटकन नहीं मालूम क्या करने जा रहे हैं कि बीसों सुपरवाइज़र इधर-उधर भेजकर धोबियों की फ़ेहरिस्तें बनवा रहे हैं। किसी की समझ में न आ रहा था। लोग अपने-अपने ख़याल दौड़ा रहे थे। मगर सही नतीजा निकालना किसी के बस की बात न थी।

जो कमरा दफ़्तर बनाया गया था, उसमें भी एक क्लर्क साहब तैनात किए गए थे, ताकि बाहर की आई हुई डाक का मुनासिब जवाब दें, और आमदा काग़ज़ात को बाक़ायदा फ़ाइल करें।

सुपरवाइज़र लोग जो बाहर गए, वह भी बेचारे बड़ी मेहनत से अपनी फ़ेहरिस्त मुकम्मिल करने की धुन में लग गए। उन पर लाज़िम किया गया था कि वे हर ज़िले से कम-से-कम पंद्रह सौ की तादाद पूरी करके एक महीने में भेजें। हर सातवें दिन अपनी कारगुज़ारी का नक़्शा मुरत्तब करके फ़ौरन् रवाना करें।

सुपरवाइज़रों को बाज़-बाज़ जगह बड़ी दिक़्क़त का सामना करना पड़ा।

एक साहब किसी धोबी के घर पहुँचे, पूछा—"तुम्हारा नाम क्या है जी ?"

"मोहन।" धोबी ने जवाब दिया।

"तुम्हारे बाप का नाम ?"

"तुम्हें बाप-दादे के नाम से क्या ग़रज़ ?" धोबी ने ज़रा अकड़कर कहा।

"आख़िर बताने में कोई हर्ज है क्या ?"

"नहीं बताते ? किसी का डर ? हमें फ़ायदा क्या बताने में ?"

"फ़ायदे की ही बात है भाई !" सुपरवाइज़र ने नरमी से कहा।

"अच्छा, बोलिए, क्या होगा फ़ायदा ?"

सुपवरवाइज़र बेचारे को तो कुछ मालूम ही न था, बतलाता क्या। बोला—"इस बात का फ़ायदा तुम्हें आगे चलकर ख़ुद मालूम हो जायगा।"

"चलो-चलो, अपनी राह नापो।" धोबी ने ज़रा बिगड़कर कहा—"फ़ायदा भी होगा, तो आगे चलकर ! अभी से बता नहीं सकते ?"

"अरे भाई ! कहा मानो, बड़े फ़ायदे की चीज़ है।"

"क्या फ़ायदे की चीज़ है ? बोलो, मेरा ब्याह करोगे क्या ?" धोबी ने गर्म होकर कहा—"है कोई घर में तुम्हारे बहन ?"

"देखो, आदमियत से बात करो जी। बेहूदा क्यों बकते हो ?"

सुपरवाइज़र ने तेवर बदलकर कहा—"अगर ऐसे ही गर्म हो, तो कर लो न अपनी ही बहन से शादी।"

"अच्छा, ख़ैरियत चाहो, तो उतरो चबूतरे से नीचे।" धोबी ने डंडा उठाते हुए कहा—"नहीं तो अभी कर दूँगा सिर के दो टुकड़े ! ऊपर से गाली देता है बदज़ात !"

"बदज़ात तू और तेरा बाप ! सीधे मुँह बात करना नहीं जानता ?"

यों कहते हुए सुपरवाइज़र साहब चबूतरे से नीचे उतरकर लंबे पड़े।

यों ही क़रीब-क़रीब दस-पाँच को टेढ़े-से-टेढ़े धोबियों का मुक़ाबिला करना पड़ा। बाज़-बाज़ तो बेचारे धोबियों के हाथों पिट भी गए। मगर बेकारी बुरी बला ! अगर नौकरी छोड़े देते हैं, तो कल को कहाँ धरी है ? बेचारे एक जगह कुट-पिटकर दूसरी जगह चले जाते, और फ़ेहरिश्त मुकम्मिल करने की फ़िक्र में पड़ जाते !

अब तो नवाब साहब के नाम डाक-पर-डाक आने लगी। दफ़्तर का काम भी चालू हो गया।

कुछ लोगों ने पुलिस में रिपोर्ट दर्ज कराई कि नवाब साहब का भंडाफोड़ हो, और ख़ुफ़िया राज़ खुले।

एक सब-इंस्पेक्टर साहब ने भी पहुँचकर उनके दफ़्तर की कार्रवाई का मुआइना किया, फिर नवाब साहब से

पूछा—"क्या मामला है नवाब साहब ! कैसी बन रही हैं ये फेहरिस्तें ?"

"यह बात अभी बताई नहीं जा सकती, थानेदार साहब !"

"आखिर कोई वजह ?"

"हाँ ।"

"क्या ?"

"अभी बताने में मेरा किया-धरा सब बेकार हो जायगा ।"

"कैसे ?"

"आप नहीं समझते । राज़ खुल जाने में मेरा नुक़सान है ।"

"वाह साहब, वाह ! खूब रही !"

"वल्लाह, सच जानिए, झूठ नहीं कहता ।"

"तो कुछ सरकार के खिलाफ़ तो नहीं है मामला ?"

थानेदार साहब ने गर्मजोशी के साथ कहा—"आपको बताना पड़ेगा ?"

"समझने को आप कुछ भी समझें, मगर मैं बताऊँगा नहीं । हाँ, सरकार के खिलाफ़ कुछ नहीं है ।"

"कैसे किया जाय यक़ीन आपकी बातों पर ?"

"अगर मेरी बात पर यक़ीन नहीं होता, तो मजबूरी है ।"

"यह भी तो सोचें आप ! आखिर मैं इस बारे में रिपोर्ट लिखूँ, तो क्या ?"

"मैं जो कहता हूँ, वही लिख दीजिए । मामला किसी के

खिलाफ़ नहीं है। मगर उसका राज़ वक़्त आने पर ही खुलेगा।"

"आखिर वह वक़्त आएगा कब ?"

"सिर्फ़ दो महीने बाद।"

"तौबा,-तौबा ! तब तक काग़ज़ात कैसे पड़े रह सकते हैं ?"

"तो जो मिज़ाज चाहे, कीजिए।"

"अच्छी बात है।" थानेदार साहब उठते हुए बोले।

थानेदार ने अपनी रिपोर्ट मुकम्मिल करके साहब कप्तान के हुज़ूर में भेज दी—"नवाब अब्दुलक़दीर उर्फ़ नवाब लटकन किसी पेचीदा प्रोपेगेंडा की तैयारी में हैं। उनके पचासों आदमी बाहर काम कर रहे हैं। यहाँ दफ़्तर में भी एक क्लर्क काम कर रहा है। बाहर से आई हुई फ़हरिस्तें दफ़्तर में फ़ाइल हैं। नवाब साहब किसी तरह पर राज़ खोलने के लिये राज़ी नहीं हैं। जो हुक्म आली हो, कार्रवाई अमल में लाई जाय।"

नवाब लटकन पर मुक़दमा क़ायम हो गया। पेशी हुई। नवाब साहब ने बयान किया—"हाँ, मैंने एक दफ़्तर खोल रक्खा है, मगर वह हमारे एक रोज़गार के सिलसिले में है।"

अदालत ने सवाल किया—"वह रोज़गार कैसा है आपका ?"

"यह मैं अदालत को अभी नहीं बता सकता।"

"आख़िर क्यों ?"

"बताने में मेरा भंडाफोड़ हुआ कि बिजनेश चौपट !"

"अदालत नहीं समझती कि तुम्हारा क्या नुक़सान होगा ?"

"इसे तो मैं जानता हूँ। अगर मैंने राज़ खोल दिया, तो मेरा रोज़गार ही न चल सकेगा।"

"अदालत फिर भी नहीं समझी कि आप रोज़गार क्यों नहीं चला सकेंगे ?"

"बात यह है हुज़ूर ! कि अगर मैंने अपनी स्कीम का राज़ खोल दिया, तो मैं ही कामयाब क्यों होने लगा ? दीगर लोग भी वैसा ही नहीं करने लगेंगे क्या ?"

"इससे आपको मतलब ? जो रोज़गार करेगा, वही नफ़ा उठाएगा।"

"नहीं-नहीं, मैं राज़ नहीं बताऊँगा हुज़ूर ! सोचने-समझने में तो दिमाग़ मैंने ख़र्च किया, और नफ़ा उठाएँ दूसरे ! ऐसा नहीं हो सकता।"

"ख़ैर, कुछ भी सही, बग़ैर राज़ खोले आपकी मुख़लिसी नहीं हो सकती। हर सूरत में बताना पड़ेगा आपको।"

"अगर अदालत मुझे मजबूर करती है, तो एक शर्त है।"

"क्या ?"

"मैंने जो भी मुरस्वाइज़र तैनात किए हैं, उनकी तनख़्वाहें मेरे सर वाजिब हैं। उन्हें तनख़्वाहें देने का वायदा अदालत को करना होगा।"

"आख़िर क्यों ?"

"मैं राज़ खुल जाने के बाद रोज़गार नहीं करूँगा। जब रोज़गार ही न हो सकेगा, तो तनख़्वाहें कहाँ से अदा होंगी ?"

कुछ देर तक अदालत ख़ामोश रही, फिर कहा गया—"ख़ैर, भेद बताइए कि कैसी स्कीम है आपकी ?"

नवाब साहब खाँसते हुए बोले—"हुज़ूर ! मौजूदा ज़माने में इश्तिहारबाज़ी का कितना ज़ोर है, इसे सभी जानते हैं। इसी की बदौलत मिट्टी भी सोने के भाव बिक जाती है। इसी के ज़रिए घास-कूड़ा भी मक्खन के दामों फ़रोख़्त हो जाता है। सारे हिंदोस्तान में हज़ारों ऐसे बड़े-बड़े दूकानदार और तिजारत-पेशा लोग हैं, जो माल तैयार करके उसकी

इश्तिहारबाज़ी में लाखों रुपए हर साल खर्च कर देते हैं, इसलिये इश्तिहारबाज़ी भी एक क़िस्म का पेशा या रोज़गार बन गया है। कलकत्ते, बंबई में कई एडवर्टाइज़िंग कंपनियाँ खुली हैं, जिनका काम ही माक़ूल उजरत लेकर दूकानदारों के माल के इश्तिहार छपवाना, बँटवाना है। मगर हुज़ूर! सच पूछा जाय तो इश्तिहारबाज़ी एक ऐसा हुनर है, जिसमें काफ़ी दिमाग़ खर्च करना पड़ता है। नए-नए तरीक़े सोचनेवाला ही इस हुनर में कामयाबी हासिल कर सकता है। मैंने भी इसी हुनर के मुतअल्लिक़ एक बिलकुल नई स्कीम सोचकर अपना काम शुरू किया था। मेरी स्कीम ऐसी थी कि मैं दूकानदारों के माल के इश्तिहार अमीर, ग़रीब, बूढ़े, बच्चे, जवान, मर्द, औरत सबके हाथों में गारंटी के साथ पहुँचा देता और वह भी हज़ार-दो हज़ार नहीं, करोड़ों की तादाद में! मुझे अफ़सोस है कि अदालत मुझे वह राज़—मेरे पेशे, मेरे रोज़गार, मेरे हुनर का वह बेशक़ीमत जौहर—ज़ाहिर करने को मजबूर कर रही है!"

नवाब साहब ख़ामोश हो गए। हाकिम अदालत ने कहा—"आप ठहर क्यों गए? अपनी स्कीम पूरी कह डालिए।"

नवाब साहब धीरे-धीरे फिर कहने लगे—"हुज़ूर! मैंने सैकड़ों सुपरवाइज़र तैनात करके सारे सूबे में, ज़िले-ज़िले, गाँव-गाँव में, भेज रक्खे हैं, उनको लंबी-चौड़ी तनख़्वाहों पर मुक़र्रर किया है—सिर्फ़ हर जगह के धोबियों की फ़ेहरिस्त

मय नाम-पते के तैयार करके यहाँ भेजने के लिये। अादालत पूछ सकती है कि इस फ़ेहरिस्त से फ़ायदा? फ़ायदा भी सुनिए। मैं हिंदोस्तान-भर के दूकानदारों के इश्तिहार बँटवाने का ठेका सस्ते दामों पर लेकर थोड़े-थोड़े इश्तिहार हरएक धोबी के पास भिजवाया करूँगा। धोबी जिस वक़्त लोगों के कपड़े धोकर उन पर लोहा करने लगेगा, तो उन कपड़ों की हरएक जेब में, हरएक तह में, एक-एक मुख्तलिफ़ चीज़ का इश्तिहार नंबरवार रखता जायगा। लोहा करने के बाद वह उन कपड़ों को अपने गाहकों के पास पहुँचा देगा।"

नवाब साहब फिर चुप हो गए। हाकिम अादलत को उनके बयान में बड़ी दिलचस्पी पैदा हो गई। उन्होंने कहा—"फिर क्या होगा नवाब साहब?"

नवाब लटकन बोले—"हुज़ूर! उसके बाद तो मज़ा आ जायगा। एक अपनी ही मिसाल ले लें हुज़ूर! दस बजे ठीक आपने नए धुलकर आए कपड़े पहनने शुरू किए, कचहरी आने की तैयारी में—उस वक़्त आपने पैंट पहना, जेब में हाथ डाला—एक इश्तिहार बरामद हुआ, जिस पर लिखा है—"हकीम आफ़ताबहुसैन का ईजादकर्दा ममीरे का सुर्मा।" दूसरी जेब से दूसरा इश्तिहार निकलता है—'कविराज के० पी० डे० का आश्चर्य मलहम', 'सौ मर्जों की अक्सीर दवा।' क़मीज़ की पॉकेट में भी कुछ खर-खराता है—आप हाथ डालकर निकालते हैं—क्या? एक

इश्तिहार, जिसमें लिखा है— नामर्दी का शर्तिया इलाज— जौहरे-मोतिया।' फिर आपके कोट पहनने की बारी आती है। कोट की मुख्तलिफ़ जेबों से 'अक्सीर दंदाँ' 'बाल-सफ़ा साबुन', 'विटेक्स', 'डोंगरे का बालामृत' वग़ैरा-वग़ैरा दीगर इश्तिहार बरामद होते हैं! कहिए, कैसा रहा इश्तिहारबाजी का तरीक़ा! मुकम्मिल, नया और सबसे ज्यादा कामयाब!!"

सारी अदालत हँस पड़ी? हाकिम ने कहा—"वाक़ई! आपने तरकीब तो बेहतरीन सोची, मगर और कोई राज़ तो नहीं?"

"और कोई राज़ नहीं, ख़ुदा की क़सम खाकर कहता हूँ हुज़ूर!" नवाब साहब ने जवाब दिया।

"काग़ज़ात आपके साथ हैं क्या?"

"हाँ, हुज़ूर।"

"लाइए, पेश कीजिए।"

नवाब साहब ने रजिस्टर खोलकर पेश करते हुए कहा—"देखिए हुज़ूर, सारे सफ़ों में धोबियों के नामो पते ही मुकम्मिल लिखे हुए हैं।" सुपरवाइज़रों के हफ़्तावार नक़्शे पेश करते हुए कहा—"देखिए हुज़ूर, ये नक़्शे मेरे मुलाज़िमान ने भेजे हैं, जो यहाँ फ़ाइल कर लिए गए हैं।"

अदालत ने ख़ूब ग़ौर कर लेने के बाद मुक़दमें की समाअत को ख़त्म कर नवाब साहब को रिहाई दे दी।

महीना भी ख़त्म होने पर ही था। इधर नवाब साहब ने अपनी स्कीम खुल जाने की वजह से काम ठप कर दिया, उधर सारे सुपरवाइज़र हाज़िर होकर तनख़्वाह के मुतलाशी हुए।

"अब आप लोगों को तनख़्वाह अदालत से मिलेगी। वहीं जाकर अपनी-अपनी दरख़्वास्तें दें आप लोग।" नवाब साहब ने सबसे कहा।

"हम किसी दूसरे को क्या जानें?" हर शख़्स ने ऐसा ही जवाब दिया।

"मगर अदालत वादा कर चुकी है आप सबको तनख़्वाह देने की।"

ग़रज़ कि यों ही बक-झक करने के बाद वे सब बेचारे सर पीट कर चले गए। नवाब साहब उन लोगों को तनख़्वाह देते भी कहाँ से। रोज़गार अपना बंद ही कर चुके थे। कहीं से पैसे की आमदनी थी नहीं, उनकी सारी स्कीम ही फ़ेल हो चुकी थी।

उपसंहार

नजमा को पंजाबी के हाथ बेचकर नूरू फ़रार हो गया था। नजमा उसी पंजाबी के साथ रहने लगी। उसके दो बच्चे भी हुए, मगर वह सुखी न रही। पंजाबी से झगड़ा होने पर वह पेशावर से बच्चों को लेकर भाग खड़ी हुई। सुना जाता है, ग़ाज़ियाबाद के किसी जुलाहे के घर बैठ गई है।

और, नई बेगम साहबा—नवाब लटकन की फ़ैशनेबिल लेडी—वह नज़ीरा के साथ भागकर बंबई पहुँच गई थीं। नज़ीरा से एक महीने बाद उनको अलाहिदा होना पड़ा, क्योंकि वहीं की एक फ़िल्म-कंपनी में उनको नौकरी मिल गई थी। वह ऐक्ट्रेस बन गई हैं, नाम रक्खा है—माधवी!

फ़हीम के बारे में ख़बर आई थी कि वह फ़ौज में भरती होकर आफ़्रिक़ा चला गया। वहाँ से फिर उसका कुछ हाल नहीं मिला। ज़िंदा है या मर गया! उसके हिस्से की जायदाद के मुंतज़िम हैं एक वहीद मियाँ, जो जायदाद की आमदनी से अपना घर दोनों हाथों से भर रहे हैं!

हमारे नवाब साहब की हालत बिलकुल गिर जाने के बाद उनकी बेगम यानी फ़हीम की मा ने मायके में अड्डा जमाया। नवाब साहब ने अब स्कीमें बनाना बंद कर दिया है।

विक्टोरिया स्ट्रीट पर उन्होंने सिगरेट, बीड़ी, पान की एक छोटी-सी दूकान खोल ली है। शाम तक चार पैसे मिल ही जाते हैं। कभी-कभी ठंडी साँसें लेकर लोगों को अपनी ज़िंदगी की दास्तान सुना दिया करते हैं। उनके पुराने यार-दोस्त अब नज़दीक फटकते भी नहीं। यह भी क़िस्मत का फेर है।